

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176140

UNIVERSAL
LIBRARY

कृषि विज्ञान

दूसरा भाग

लेखक

पण्डित शीतलाप्रसाद तिवारी



प्रकाशक :

गङ्गा रामदयाल शर्माद्वारा, प्रयाग

कृषि विज्ञान

दूसरा भाग

लेखक

पण्डित शीतलाप्रसाद तिवारी 'विशारद'
लेक्चरर, कृषि-विभाग, पूर्वीय सरकिल, संयुक्त-प्रान्त
तथा प्रोप्राइटर, चन्द्रवटा डिमॉस्ट्रेशन फार्म, दादूपूर
प्रतापगढ़ (अवध)

प्रकाशक

रायसाहब रामदयाल अगरवाला

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १०००]

१९४१

[मूल्य ॥८७]

All rights reserved by the publisher

भूमिका

कृषि-विज्ञान प्रथम-भाग के प्रकाशित होने ही प्रान्तीय शिक्षा-विभाग ने उसे हाई-स्कूल की कृषि-परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक स्वीकार करके उसकी उपयोगिता को उपयुक्त स्थान दिया। इसके अतिरिक्त वह पुस्तकालयों में संग्रहीत होने योग्य भी समझी गई, और पारितोषिक-वितरण में भी उसका यथा योग्य प्रचार होने लगा।

देश की सर्व माननीय संस्था हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने कृषि-विज्ञान के दोनों भागों को उत्तमा-परीक्षा और कृषि-विशारद की परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक चुनकर उसकी उपयोगिता को शिक्षित-समाज के सम्मुख उचित सम्मान दिया।

इतना ही नहीं कृषक-जनता में भी उसका पूर्ण प्रचार हुआ और दूसरे भाग की माँग दिनोदिन बढ़ती गई। जनता की अभिरुचि के अनुसार 'कृषि-विज्ञान' का यह दूसरा भाग भी सेवा में उपस्थित है।

चन्द्रवटा डिमाँस्ट्रेशन, फार्म
दादूपूर, प्रतापगढ़ (अवध)
होली, सं० १९६७ वि०

}
}
}

शीनलाप्रसाद तिवारी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—बुवाई	१
२—उन्नति-प्राप्त बीजों की बुवाई	१५
३—फसलों की चकबन्दी में बुवाई	२२
४—क्यारी-ब्रहे बनाना	२३
५—सिंचाई	२६
६—कुएँ द्वारा सिंचाई के साधन	३७
७—ढेकली द्वारा खेतों की सिंचाई	३७
८—रहट द्वारा सिंचाई	३८
९—चरसे द्वारा सिंचाई	४१
१०—घरा	४५
११—बोरिङ्ग	४६
१२—ट्र्युबबेल या पाताल कुएँ	४८
१३—तालाबों द्वारा सिंचाई	५०
१४—दुगला या बेड़ी द्वारा सिंचाई	५२
१५—बलदेव बाल्टी	५४
१६—इजिप्शियन-स्कू-वाटर-लिफ्ट	५६
१७—चेनपम्प	५८
१८—पानी का पहिया	६०

(ग्व)

१६—नहर	...	...	६१
२०—निकाई-गुड़ाई	...	...	६३
२१—खड़ी फसलों में बीजों का चुनाव	...	...	७४
२२—फसलों की रखवाली	...	...	७८
२३—फसलों की कटाई	...	...	८१
२४—खलिहान	...	...	८७
२५—खलिहान की सफाई	...	...	८६
२६—मड़ाई	...	...	८८
२७—फसलों की ओसाई	...	...	१०७
२८—गोदामों में बीज की सफाई	...	...	१११
२९—चलना	...	...	११२
३०—अन्न की खरीद फरोख्त	...	...	११४
३१—सहयोगी बीज भंडार	...	...	११६
३२—बखार	...	...	१२०
३३—बखार में बीज संग्रह करने की रीति	...	...	१२४
३४—बीज की बखार	...	...	१२६
३५—खेती का हिसाब-किताब	...	...	१२८
३६—सहयोग समितियों का हिसाब-किताब	...	...	१३३

कृषि विज्ञान

दूसरा भाग

बुवाई

खेतों की जुताई करने तथा ग्याद डालने के पश्चात् बुवाई का काम आरम्भ होता है। खेतों की बुवाई करने के लिए मज से पहिले बीज की आवश्यकता होती है। बीज की ही उत्तमता निरोगिता तथा शुद्धता पर फसलों की उपज निर्भर है। यदि बीज स्वस्थ शुद्ध और निरोग न होगा तो पैदावार कभी भी उत्तम प्राप्त नहीं हो सकती। खेतों की अच्छी जुताई तथा ग्याद का प्रयोग अच्छे बीजों की बुवाई से ही अच्छी पैदावार दे सकती हैं। इसलिये खेतों की बुवाई के समय सबसे पहिले स्वस्थ, निरोग, शुद्ध बीजों का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

खेतों में बोने के लिए फसलों के बीज कई प्रकार के होते हैं। कुछ फसलों के तो दाने ही बीज का काम देते हैं। जैसे गेहूँ, जव चना, मटर, सरसों इत्यादि के दाने ही खेतों में बोए जाने पर उगते हैं और फसल के रूप में पैदावार देते हैं। किन्तु कुछ पौदों के बीज उनके फलों में रहते हैं; जैसे भाँटा, मिर्च, टमाटर इत्यादि पौदों के बीज इनके फलों में रहते हैं। जब इन पौदों के फल पक जायँ और धूप में अपने आप सूख जायँ तो इनसे

बीज प्राप्त करके बुवाई करनी चाहिए। ऐसी फसलों के बीज पहिले क्यारियों में बोए जाते हैं। जब इनके बीज उगकर कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उन्हें खेतों में उखाड़-उखाड़ कर लगाया जाता है। जो पौधे क्यारियों में उखाड़-उखाड़ कर लगाए जाते हैं, वही आगे चलकर फसल के रूप में फल देते हैं।

कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनका न तो बीज खेत में बोया जाता है; न क्यारियों में बीज बोकर पौधे—पैदा करके फसल उगाते हैं। बल्कि इन पौधों के ख़ास भाग ही खेतों में बोकर नई फसल पैदा की जाती है; जैसे गन्ना, आलू, वण्डा, अदरक। ऐसी फसलों का बीज खेतों में नहीं बोया जाता। गन्ने के तने के टुकड़े काट-काट कर बोए जाते हैं, जो अगली फसल में पैदावार देते हैं। इसी प्रकार से आलू और वण्डा के टुकड़े करके बोए जाते हैं।

कुछ फसलें ऐसी भी हैं जिनका गवा काट-काट कर खेत में लगाया जाता है; जैसे शकरकन्द। इस फसल का न तो बीज ही खेत में बोया जाता है, न शकरकन्द ही खेत में लगाई जाती है। बल्कि इसकी बेल के टुकड़े काट-काट कर खेत में लगाते हैं।

उक्त बातों के वर्णन से सिद्ध हुआ कि भिन्न-भिन्न फसलों को बोने के लिए भिन्न-भिन्न तरीके हैं। इसलिए फसलों की बुवाई भी एक गहन विषय है। जिसका समुचित वैज्ञानिक-ज्ञान प्राप्त किए बिना कृषि से लाभ की संभावना नहीं है।

बीजों के बोने की जो बातें ऊपर बतलाई गई हैं; उससे प्रकट

होता है कि कुछ फसलों के बीज तो संचय करके वैज्ञानिक रीतियों से बीज-भण्डारों में सुरक्षित करके रखे जाते हैं, जो बुवाई के समय बोने के काम आते हैं। अतिरिक्त इसके कुछ बीज ऐसे हैं जो खेतों में ही फसलों के रूप में खड़े रहते हैं। उन्हीं खेतों में ही काट कर उन्हें बोया जाता है। इसलिए दोनों प्रकार के बीजों को सुरक्षित रखना पड़ना है। चाहे फसलों के बीज, बीज-भण्डारों में सुरक्षित रखे जायें, चाहे कृषि-क्षेत्रों पर हरी दशा में रहें। हर हालत में इनका शुद्ध, निरोग तथा स्वस्थ रहना आवश्यक है।

वर्तमान काल में खेतों की बैगारी करने के बाद किसान लोग बोने के लिए शुद्ध, निरोग तथा स्वस्थ बीज की तलाश बहुत ही कम करते हैं। अधिकतर किसान लोग अपने घरों में रखे हुए या महाजनों द्वारा जो बीज बाँटा जाता है, उसे लेकर खेतों की बुवाई करते हैं। बहुत से किसान बाजारों में जो अन्न खाने के लिए विकता है उसे भी खरीद कर बो देते हैं। इन रीतियों से जो खेत बोए जाते हैं, उनसे उन लोगों को तो हानि होती ही है। साथ ही साथ आस-पास के किसानों को भी जो स्वस्थ, निरोग बीज सरकारी बीज-भण्डारों से लाकर बोते हैं, उन्हें भी पूर्ण रीति से हानि उठानी पड़ती है।

इसका मुख्य कारण यह है कि जिस प्रकार से मनुष्यों और जानवरों में यदि किसी को छूत की बीमारी हो गई तो उसके द्वारा स्वस्थ मनुष्यों तथा जानवरों में भी छूत की बीमारी फैल जाती है। इसी प्रकार से जिन किसानों ने अपनी असावधानी से रोगी तथा

अश्वस्थ बीज बोया है यदि उनकी फसलों में रोग लग गया तो गाँव की फसलों का सारा क्षेत्रफल बर्बाद हो जाता है। ऐसी अवस्था में फसलों की पैदावार मारी जाती है। जिससे उस ग्राम की आर्थिकावस्था का पतन हो जाता है। इसलिये ग्रामों में सहयोग-समितियों की स्थापना करके इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि ग्रामों में सब लोग ऐसे बीजों की बुवाई करें जो वैज्ञानिक-दृष्टि काण से शुद्ध निरोग और उन्नति प्राप्त हों।

बहुत से लोगों में यह धारणा फैल गई है कि सरकार बीज बाँटने का काम तथा उसके द्वारा जो व्यवसाय होता है, उसे अपने हाथ में लेना चाहती है। देहात में जो लोग बीज का लेन-देन करते हैं उनके व्यवसाय को नष्ट करना चाहती है। वास्तव में उक्त धारणा में कोई तथ्य नहीं है। देहात में देशी-महाजन जिस प्रकार से रुपये का लेन-देन करते हैं उसी प्रकार से बहुत से महाजन गल्ले का भी लेन-देन करते हैं। गल्ले का लेन-देन करने वाले महाजनों को इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि जो बीज हम किसानों को दे रहे हैं, उसके बोने से पैदावार अच्छी होगी या खराब। उनका ध्येय तो गल्ले का बाँटना और अपना व्यवसाय चलाना रहता है।

ऐसे देशी महाजन वैशाख, ज्येष्ठ में किसानों से बीज लेकर इकट्ठा कर लेते हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि किस किसान का बीज; बीज की दृष्टि से उपयुक्त है और किस किसान का बीज बोने योग्य नहीं है, बल्कि खाने योग्य है। इन बातों पर विचार

न करके सभी प्रकार के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट श्रेणी के बीजों को खत्तियों में इकट्ठा कर लेते हैं।

यही महाजन सावन-भादों में जब किसानों के पास खाने के लिये अन्न नहीं होता तो खत्तियों का कुछ भाग खोलकर 'खौही' के नाम से सवाये तथा ड्योढ़े पर किसानों को अन्न बाँटते हैं। सावन-भादों में जितना अन्न बाँट जाता है उसके अनिश्चित जो अन्न खत्तियों में अवशेष रह जाता है, उसे कार-कार्तिक में बाने के लिये पुनः बाँटते हैं। अधिकतर वही किसान जो देशी-महाजनों से सावन-भादों में खौही के रूप में अन्न ले गये थे; कार-कार्तिक में बाने के लिये अन्न ले जाते हैं।

देशी महाजनों द्वारा वितरण किया हुआ अन्न न तो बीज की दृष्टि से ही एकत्रित किया जाता है, न बीज की दृष्टि से गोदामों में रखा ही जाता है। इस कारण देशी महाजनों का बीज बाँट जाने पर ठीक रीति से उगता नहीं है। ऐसे बीजों को अनुभव के लिये बाने पर ज्ञात हुआ है कि इन बीजों में उगने की शक्ति ५० प्रतिशत से लेकर ७० प्रतिशत तक पाई जाती है। जब ऐसे बीजों के उगने में ही इस प्रकार की त्रुटि है तो बढ़कर फसल से पैदावार प्राप्त करने के परिणाम का अन्दाज़ा पाठकगण स्वयं कर सकते हैं।

मेरा विचार उल्लिखित बातों के वर्णन करने का यह है कि देहातों में बुवाई के समय जिन बीजों को बाने के काम में लाया जाता है; वह बीज उन्नति-प्राप्त-कृषि की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त हैं। ऐसे बीजों की बुवाई से हमारे देश के किसानों को लाभ नहीं

पहुँच सकता; न कृषि-व्यवसाय से उनकी आर्थिकावस्था ही सुधर सकती है। यह बात भले ही ठीक हो कि ऐसे बीजों की बुवाई से खाने-पीने के लिये कृषकों को किसी न किसी तरह से मेहनत करने पर इतना अश्रु उपज के रूप में मिल जाय कि वह अपनी गुज़र बसर कर लें।

आजकल का ज़माना अब ऐसा नहीं रहा कि थोड़ी आय में गुज़र करने के लिये सभी प्राणी त्याग का जीवन व्यतीत करें। दुनिया की रंगत बदल गई है। जो किसान अपने बाल-बच्चों को शिक्षा नहीं देता या बच्चों की शादी पढ़ने-लिखने के बाद पढ़ी लिखी लड़कियों से नहीं करता, उसका कुटुम्ब स्मशान घाट हो जाता है। उसके घर के प्राणी कलह का जीवन आर्थिक-कठिनाइयों के कारण बिताते हैं। इसलिये पारिवारिक आय को बढ़ाने के लिये अब कृषि-व्यवसाय में देशी महाजनो के बीजों का त्याग करना पड़ेगा। खेतों की बुवाई के लिये उन्नति प्राप्त सुधरे हुए बीजों को खेतों में बोना पड़ेगा, जिससे फसलों से देशी महाजनो के बीजों की अपेक्षा पैदावार अधिक मिले।

देशी-महाजनो के बीजों से जो बुवाई होती है, उसकी उपज की खपत अधिकतर देहातों की ही बाज़ारों में होती है। देश के बड़े-बड़े नगरों में तथा विदेशों में ऐसे बीजों की खपत नहीं होती इसलिये हमारे देश के किसानों को फसलों की उपज के रूप में उचित मूल्य नहीं मिल सकता।

वर्तमान काल में हमारे देश का सम्बन्ध व्यावसायिक दृष्टि

से संसार के अन्यान्य देशों से हो गया है। इसलिये हमारी वस्तुएँ विदेशों की वस्तुओं के मुकाबिले में बाजारों में परख कर खोटी और खरी कही जाती हैं। इसलिये अब समय आ गया है कि हम खेतों में अच्छी जाति के बीज बोकर उत्तम फसल तैयार करें। ऐसी फसलों से जो उपज होगी, उससे जो आय होगी वह हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकेगी।

प्राचीन काल में जो बीज हमारी खेतों में बोये जाते थे; उन बीजों को केन्द्रीय कृषि-विभाग तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग ने सरकारी कामों पर एकत्रित करके अनुभव किया। जो बीज उपज की दृष्टि से अच्छी पैदावार देने वाले जैचे उनको बोने के लिये किसानों में वितरित किया जाता है। पैदावार की दृष्टि को छोड़कर इस बात पर भी कृषि-विभाग के विद्वानों ने विचार किया है कि इन बीजों में फसलों के रोगों का आक्रमण भी न हो सके। जिससे रोगों के द्वारा जो हानि होती थी वह भी इन उन्नति-प्राप्त बीजों के प्रचार से अब जाती रही है।

उन्नति-प्राप्त सुधरे हुये बीज सरकारी कृषि-विभाग की गोदामों से जो देहातों में स्थापित हैं, मिल सकते हैं। यद्यपि इन गोदामों से बीज सवाये, नकद, उधार सभी रीतियों से मिल सकता है। किन्तु कृषि-विभाग का प्रधान उद्देश्य यह है कि देहातों में हर एक ग्राम में किसानों की ऐसी सहयोगी-पंचायतें कायम हो जायें जो स्वयं उन्नति प्राप्त बीजों का संग्रहण और लेन-देन करें। जिससे उन्नति-प्राप्त बीजों के लेन-देन से जो लाभ सरकारी बीज

गांदाओं का होता है, वह सहयोगी समितियों द्वारा किसानों को ही हो।

हरक ग्राम में जितने किसान हों उन्हें आपस के मेल-जोल से अपने ग्राम में सहयोग-समिति की स्थापना करके उस समिति द्वारा कृषि-विभाग से एक बार सभी उन्नति-प्राप्त बीज मँगा लेना चाहिये। आरंभ में बीज कृषि-विभाग द्वारा पंचसाला विना मृदी स्कीम पर अथवा दस प्रति मैकड़े व्याज पर समिति के अधिकारियों का मिल जायगा। इस बीज का जो कृषि-विभाग से मिले किसानों को पूरे गाँव में हरेक खेत में बुवाने की कोशिश करना चाहिये। इस रीति से हरेक ग्राम में उन्नति-प्राप्त बीज फैल जायगा। दूसरा लाभ यह होगा कि जो आय बीज के लेन-देन से देशी-महाजनों का हुआ करती थी; वह आय ग्राम की सहयोग समिति का होगा। उसका उपयोग ग्राम के सभी किसानों के हितार्थ सब लोगों की राय से किया जा सकता है। इस रीति से बुवाई के समय किसानों का सभी फसलों की बुवाई के लिये उन्नति-प्राप्त सुधरे हुये बीज मिल सकते हैं।

बुवाई के समय उन्नति प्राप्त सुधरे हुये बीजों का प्रबन्ध प्रत्येक ग्राम को अपने ग्राम की सहयोग-समितियों के द्वारा सरकारी कृषि-विभाग की सहायता से करना चाहिये। फसलों के सभी बीज जैसे गेहूँ, जव, चना, मटर, गन्ना, आलू, सरसों, धान, अलसी, मक्का, ज्वार, बाजरा के उन्नति-प्राप्त बीज सरकारी कृषि-विभाग से मिल सकते हैं। इसके प्राप्त करने के सभी जरिये इतने

सुगम और कम खर्च के बना दिये गये हैं, जिनके द्वारा किसानों की ग्रामों में स्थापित सहयोग-समितियों को हरेक प्रकार से लाभ है।

यद्यपि कृषि-विभाग से जां बीज बाने के लिये किसानों को सहयोग-समितियों द्वारा मिलेगा वह हरेक दृष्टि से परीक्षित शुद्ध तथा निरोग होगा। फिर भी बीजों की परीक्षा करना कि उनमें प्रतिशत उगने की क्या शक्ति है, आवश्यक है। बीजों की परीक्षा बिना किये हुये कभी भी बीजों को खेतों में बाना नहीं चाहिये। प्राचीन-काल में भी बीजों की परीक्षा बुवाई के पहिले होती थी। कार के दूसरे पक्ष में नवरात्र के समय जब हिन्दू जाति के किसान दुर्गा पूजा करते हैं, तो मिट्टी के कलश में जब डन्यादि अन्नो को गीली मिट्टी में गाड़कर उसके उगने की शक्ति की परीक्षा आज तक करते हैं। दशहरा के त्याहार पर यही जब के पौदे की जड़ शुभ कामना के लिये काश्तकारों में आपस में वितरण करने का रवाज आज तक प्रचलित है।

बीजों की परीक्षा करने का नियम बुवाई के पहिले हमारे देश में प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसलिये बुवाई के पहिले बीजों की परीक्षा करना आवश्यक है। जिन बीजों को खेत में बाना हो उस जाति के बीज को जहाँ पर वह रक्खा हो हरेक बोरे से परखियों द्वारा या बखार के चारों ओर से थोड़ा २ दाना लेकर मिला लेना चाहिये। अन्त में इस मिले हुये दाने में से गिन कर सौ दाना निकालना चाहिये। इस सौ दाने को खेत की

किसी क्यारी में, या गमलों में वो देना चाहिये। बोन के बाद उम बीज का प्रति दिन निरीक्षण करते रहना चाहिये, नहीं तो गिलह-रियाँ तथा चिड़ियाँ इन बीजों को खा जायंगी।

लगभग एक सप्ताह में बीज उग आयेगा। जब बीज उग आवें तो उगे हुये बीजों को गिनकर देखना चाहिये कि सौ बीज में से कितने बीज उगे हैं। इन उगे हुये बीजों में से कितने स्वस्थ तथा हरे-भरे पौदे हैं। यदि सौ बीजों में से पनचानवे बीज भी उगकर हरे-भरे पौदे दे सकें तो ऐसे बीजों को उत्तम श्रेणी का बीज समझना चाहिये। ऐसे बीजों की बुवाई से उत्तम श्रेणी की पैदावार की आशा करनी चाहिये। यदि पनचानवे से कम बीज उगे तो उन्हें मध्यम श्रेणी का बीज समझना चाहिये; जहाँ तक संभव हो ऐसे बीजों की बुवाई न करना चाहिये। अधिकतर ६० प्रतिशत तक उगने वाले बीजों की बुवाई लोग करते हैं। किन्तु ६० प्रतिशत उगने वाले बीजों की गणना मध्यम श्रेणी के बीजों में की जानी है।

उत्तम श्रेणी के शुद्ध तथा निरोग बीजों को उगने के लिये जव खेतों में वो दिया जाता है तो वह उग आते हैं। बहुत से खेत जिनमें नमी नहीं रहती बीज नहीं उगता। बहुत से किसान बोन के पश्चात् जव खेतों की मिँचाई करते हैं तो बहुत से बीज उगते हैं। इसका क्या कारण है? इसका प्रधान कारण यही है कि बीज को उगने के लिये नमी की विशेष आवश्यकता होती है। बीजों को यदि खेत में न बोकर पानी से तर करके किसी तश्तरी

में या सोखने के टुकड़ों पर ढककर रख दीजिये तब भी वह उग आवेगा। किन्तु उगने के कुछ दिनों बाद आप से आप मृग्य जायगा।

उक्त बातों पर विचार पूर्वक मनन करने से पता चलेगा कि बीज भी मनुष्यों और जानवरों के समान जीवधारी पदार्थ हैं। बीज के जीवधारी पदार्थ होने की सारी बातें वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दी हैं। बीज और पौधे की जीवन-चर्या वनस्पति विज्ञान का मुख्य अंग है। इसलिये उस विषय को विस्तार रूप से यहां न छेड़कर केवल उन थोड़ी सी बातों का वर्णन किया जायगा जो इस पुस्तक के पाठकों के लिये आवश्यक है।

जिस प्रकार से माता के गर्भाशय में पुरुष जाति का वच्चा जीवित रहता है। जब यही वच्चा माता के उदर से उत्पन्न होता है तो अपने आप दूध पीकर बढ़ता है। उसी प्रकार से प्रत्येक बीज में पौधे को पैदा करने वाला अंकुर जिसे अँसुआ कहते हैं बीज के अन्दर मौजूद रहता है। यही बीज जब तक मिट्टी के घड़ों में तथा खेतों में मृत्वी जगह में रक्खा रहता है तब तक नहीं उगता। ज्योंही बीज का पानी का अंश अर्थात् नमी मिलती है, त्योंही उग आता है। जैसे चना, मटर को यदि भिगा दीजिये तो बीज फूलकर आकार-प्रकार में मोटा हो जायगा। दो एक दिन में यही बीज अँसुआ देने लगेगा। इससे सिद्ध हुआ कि बीज के अन्दर अँसुआ पहिले ही से मौजूद रहता है जो नमी पाने

पर बीज के फूल आने पर अपने आप उग आता है। इससे यह बात सिद्ध हो गई कि बीज को उगने के लिये नमी की विशेष रूप से आवश्यकता है। यदि खेतों में पर्याप्त रूप में नमी मौजूद न रहेगी तो बीज कभी भी भली प्रकार से न उगेगा।

बीज को उगने के बाद यदि कुछ बीजों को ऐसी जगह में रख दिया जाय जहाँ सूर्य की रोशनी न पहुँच सके अर्थात् अँधेरे कमरे में। प्रतिकूल इसके कुछ उगे हुये बीजों को ऐसे स्थान में रखिये जहाँ सूर्य की रोशनी पूर्ण मात्रा में पहुँचती हो। उक्त स्थानों में रखे हुये बीजों का निर्गन्ध प्रति दिन करते जाइये। कुछ दिनों के बाद आपको पता चलेगा कि अँधेरे में रखा हुआ बीज का पौदा मुर्भा रहा है, प्रतिकूल इसके सूर्य की रोशनी में रखा हुआ पौदा लहलहा रहा है। इससे सिद्ध हुआ कि बीज को उगने और बढ़ने के लिये जिस प्रकार से नमी की जरूरत है उसी प्रकार से सूर्य की गर्मी और प्रकाश की भी जरूरत है।

जो पौदा बीज से उगकर सूर्य की गर्मी और प्रकाश में लहलहाता रहता है उस वायु भी बराबर मिलती रहती है। अँधेरे कमरे में रखे हुये बीज के पौदे को वायु पूर्ण रूप से नहीं मिलती इसलिये पौदा मुर्भा जाता है। बीज को उगने के लिये नमी, सूर्य की गर्मी, प्रकाश तथा वायु की अत्यन्त आवश्यकता होती है। उक्त बातें यदि बीज के लिये खेतों में पूर्णरूप से नहीं पहुँच सकेंगी तो बीज ठीक रीति से उग नहीं सकता।

अतएव बीजों को उगने के लिए तथा उगकर बढ़ने के लिए

खेतों में नमी, सूर्य की गरमी तथा वायु का संचालन उचित रूप में होना आवश्यक है।

बीज में उक्त आवश्यक बातों के संयोग से जब अंकुर उग आता है तो पहिले यह अंकुर बीज में जां खूराक जमा रहती है उसे ही खाकर बढ़ता है। यदि किसी उगते हुए बीज को चाकू से चीर कर माइक्रासकोप द्वारा बीजों के भीतरी भागों का निरीक्षण किया जाय तो पता चलेगा कि बीज के भीतर अँखुण की जां खूराक पहिले ठोस दशा में जमी हुई थी वह भी नमी पाकर नरम तथा तरल अवस्था में परिवर्तित हो गई है। इस नरम और तरल अवस्था में परिवर्तित हुई बीज की खूराक को बीज का अँखुआ चूस-चूस कर बढ़ता है, जब अँखुआ बढ़ रहा हो तो उसका निरीक्षण करने से पता चलेगा कि अँखुआ तो ऊपर की ओर बढ़ रहा है जिसमें हरी-हरी पत्तियाँ निकल रही हैं। प्रतिकूल इसके नीचे के भाग में सूत के समान बहुत से रेशे इधर-उधर फैले हुए हैं। सूत के समान यह रेशे बीज द्वारा उत्पन्न अँखुण की—जां वाद में पौदा हो जायगा जड़ें हैं। जब तक बीज में खूराक रहती है तब तक बीज का अँखुआ और जड़ें अपने आप बढ़ती हैं। जब बीज की खूराक समाप्त हो जाती है तो बीज द्वारा उत्पन्न अँखुण की जड़ों द्वारा भूमि में अँखुआ अपनी खूराक ग्रहण करता है। इस प्रकार से जड़ों द्वारा भूमि में खूराक ग्रहण करके अँखुआ बढ़कर पौदा हो जाता है। अन्त में बीजों के पौदे ही फसल के रूप में अन्न देकर कृषकों को समृद्धिशाली बनाने हैं।

पौदे जव बढ़ जाने हैं तव मनुष्यों की भाँति इसमें नर तथा मादा पौदे भी पाए जाते हैं। किन्तु ऐसे पौदों की संख्या अधिक है जिसमें पौदों के नर तथा मादा के भाग एक ही पौदे में पाए जाते हैं। जिन पौदों में नर तथा मादा के पौदे अलग-अलग होते हैं उनमें नर पौदों में तो केवल फूल उत्पन्न होता है। मादा पौदों में उन नर पौदों के फूलों के संयोग में फल लगता है; यह बात पपीते के पौदों में भली प्रकार से निरीक्षण की जा सकती है।

अधिकांश पौदों में नर और मादा के भाग एक ही पौदे में पाए जाते हैं, जो वायु के द्वारा हिलने-डुलने से आपस में मिल जाते हैं या मधु-मक्षियों तथा तितलियों द्वारा अथवा इर्सी प्रकार के अन्योन्य कीड़ों द्वारा जो फूलों का रस चूसा करते हैं, मादा तथा नर भाग का संयोग हो जाता है, जिससे पौदों में फल लगता है। तथा बीज उत्पन्न होता है।

बीज उत्पन्न करने की इन प्राकृतिक क्रियाओं का अध्ययन करके आजकल के वनस्पति-विज्ञान वेत्ताओं ने बहुत से नये किस्म के भी बीज उत्पन्न कर दिये हैं। जैसे किसी बीज में यदि यह गुण है कि उसमें रोग नहीं लगता किन्तु वह पैदावार की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसी प्रकार से यदि किसी बीज की पैदावार अच्छी है, किन्तु उसमें रोगों के आक्रमण को रोकने की शक्ति नहीं है, जिसके कारण उसकी पैदावार मारी जाती है—तो दोनों के संयोग से एक नई जाति का बीज पैदा करके उस नए पौदे को उत्पन्न किया जाता है। इस नए पौदे द्वारा जो बीज उत्पन्न होता है उसमें

पैदावार तथा रंगों के आक्रमण से वचने के गुण पाये जाते हैं। इस रीति से वर्णशंकर जाति के उन्नति-प्राप्त बीज कृषि-विभाग द्वारा उत्पन्न करके प्रचलित किये गये हैं।

उन्नति-प्राप्त बीजों की बुवाई

बीजों की वैज्ञानिक बातों का संक्षिप्त वर्णन पाठकों की जानकारी के लिये अब तक किया गया है। अब बीजों की बुवाई की रीतियों का वर्णन किया जायगा। उन्नति प्राप्त सुधरे हुए बीजों की बुवाई भी आजकल वैज्ञानिक रीतियों में की जाती है; जिसमें फसलों द्वारा उपज भी अधिक होती है तथा निकाई-गुड़ाई करने वाले नवीन वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र भी खेतों में मनुष्यों तथा जानवरों द्वारा आसानी से चलाये जा सकते हैं। जिनके द्वारा मजदूरी और समय में वचन होती है।

प्राचीन काल में हमारे देश में फसलों की बुवाई अधिकतर बीजों को खेतों में हाथ से छिटक कर की जाती थी। जैसे ज्वार बाजरा, अरहर, चना, अलसी की बुवाई आज तक छिटकवाँ रीति से किमान लोग करते हैं। छिटकवाँ रीति से बहुत सी फसलों की बुवाई की जाती है। जिससे पौदे बहुत ही घने उगते हैं। घने पौदों की निकाई-गुड़ाई केवल खुरपी द्वारा ही हो सकती है। इस रीति से पौदे बहुत ही घने रहते हैं, जिससे पौदों की उपज अच्छी नहीं होती। किन्तु तो भी महीन बीजों का छिटकवाँ रीति से बोना चाहिये। क्योंकि बहुत सी फसलों के बीज जो

महीन होते हैं, कृतारों में हल के पीछे कूढ़ों में बोये ही नहीं जा सकते ।

छिटकवाँ रीति के बाद आजकल बहुत सी फसलों के बीजों को कृतारों में बोने का रवाज प्रचलित हो गया है । कृतारों में बीज दो रीतियों में बोये जाते हैं । पहिली रीति तो यह है कि हल के पीछे कूढ़ों में बीज डालते हैं । कहीं कहीं हल में "माला-वांसा" लगा रहता है ।

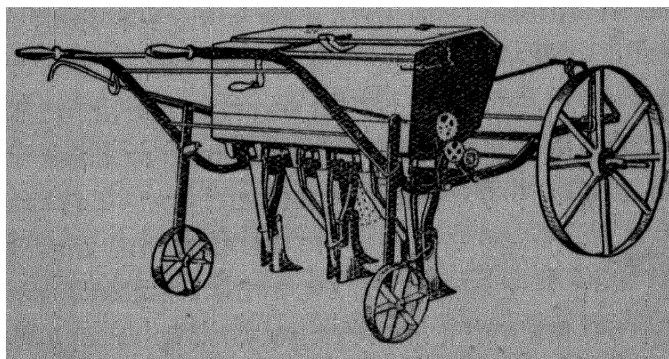
हल के पीछे "माला-वांसा" द्वारा बोने से बीज उगता तो कृतारों में है । किन्तु इस रीति से कृतारें बहुत ही नज़दीक-नज़दीक रहती हैं । इस रीति से गेहूँ, जव, मटर, चना इत्यादि फसलों की बुवाई की जाती है । उक्त फसलों की बुवाई के समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि बीज इतनी गहराई पर पड़े जहाँ उसे खेत में पर्याप्त-मात्रा में नमी मिल जाय, जिससे वह उग सके ।

देहातों में हल के पीछे कूढ़ों में तथा माला-वांसा से बोने की प्रथा अधिकतर प्रचलित है । बुवाई करने वाली कृषक-स्त्रियाँ इस रीति से बीजों को भली प्रकार से बो लेती हैं । किन्तु वर्तमान काल में वैज्ञानिक रीति से बुवाई करने के लिये बोने की मशीनों का भी चलन हो गया है ।

बोने की मशीन का चित्र आगे चित्रित किया गया है । इन मशीनों द्वारा बीज एक साथ कई कूढ़ों में गिरता है । दूसरे बीज गिरने की गहराई भी समान रहती है । यह मशीन बैलों द्वारा चलाई जाती है । बीज को रखने के लिये मशीन में एक भाग भी बना

हुआ है। बीजों की बुवाई के लिये यह मशीनें भी व्यवहार में लाई जाती हैं।

बीज बोने की मशीनें वहीं पर लाभप्रद सिद्ध होंगी, जिन गाँवों में सहयोग-समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। साथ ही फसलों की चक्रवन्दी का रवाज भी प्रचलित हो गया है और गाँव के सभी किसान फसलों की चक्रवन्दी के लाभों से अवगत हो गये हैं।



चित्र नं० १

बीज बोने की मशीन

ऐसे ग्रामों के अतिरिक्त जो लोग बड़े क्षेत्रफल में खेती करते हैं उन लोगों के लिये भी यह बोने की मशीनें लाभप्रद हैं। जिन गाँवों तथा स्थानों में इनकी उपयोगिता लाभप्रद हो वहाँ पर इनका उपयोग आवश्यक है।

फसलों के बीजों को छिटक कर तथा हल के पीछे कूदों में एवं मालावाँसा से बोने के अतिरिक्त मशीनों द्वारा बुवाई का

प्रचार आजकल हो रहा है। उक्त रीतियों में कुछ ही फसलें बाँई जा सकती हैं। बहुत सी फसलें ऐसी हैं, जो कतारों में पर्याप्त दूरी पर बोये जाने पर ही अच्छी उपज देती हैं। ऐसी फसलों के पौदे यदि जब गेहूँ के समान घने होंगे तो पैदावार अच्छी न होगी। जैसे मक्का, कपास, ज्वार, बाजरा इत्यादि फसलों के बीजों को यदि छिटक कर घना बो दिया जायगा तो अच्छी पैदावार प्राप्त नहीं की जा सकती। दूसरे खरीफ में हल के पीछे इन फसलों को कूटों में बो भी नहीं सकते। इसलिये खेतों की जुताई करने के बाद खेतों में पाटा देना चाहिये; जब खेत समतल हो जाय तो एक फीट डेढ़ फीट, या दो फीट की दूरी पर अर्थात् जिस फसल के लिये जैसा आवश्यक हो, रस्सी से निशान बनाकर कतारों में फसलों की बुवाई करना चाहिये। कतारों में फसलें कई दृष्टियों से बाँई जाती हैं। कुछ फसलें तो कतारों में अकेली बोई जाती हैं। कुछ फसलें कतारों में मिलवाँ बाँई जाती हैं। कतारों में कुछ फसलों के तो बीज बोये जाते हैं, जैसे मक्का, कपास, अगडो इत्यादि। इसके अतिरिक्त कतारों में कुछ पौदों की पौद लगाई जाती है, जैसे टमाटर, गोभी, भाँटा, मिर्च।

कतारों में कुछ फसलों की बुवाई पानी भरे हुये खेतों में भी करनी पड़ती है, जैसे अगहनी धान की बहन लगान का रवाज है। जो फसलें कतारों में बाँई जाती हैं; उन्हें आवश्यक दूरी पर बोने के लिये पहिले खेतों में रस्सी से निशान लगाना आवश्यक है। बुवाई के समय लगभग सौ गज लम्बी पतली रस्सी जो सनई या

पटमन के रंगों की बनी हुई हो साथ में रखना आवश्यक है। इस रस्सी के दोनों सिरों पर दो लोहे या बाँस की खूंटिया भी रखना बहुत जरूरी है। इन खूंटियों को खेत के किनारों पर गाड़कर निशान लगा देना चाहिये। निशान लगाने के लिए बाँस का डण्डा भी पास में रखना चाहिये। रस्सी के पास बाँस के डंडों से तथा पैर से निशान बनाया जा सकता है।

सौधी क्रतारों को बनाने के लिए आजकल कुछ कृषि-यन्त्र भी बनाए गए हैं, जिनमें निशान लगाने का भी भाग लगा रहता है। खेत में जब निशान लग जाय तो खूंटों और रस्सियों को उखाड़ कर पर्याप्त दूरी पर जिस फसल के लिए जितनी दूरी आवश्यक हो दूसरा निशान लगाना चाहिए। इस रीति से क्रतारों में बोन के लिए खेतों में निशान लगाकर बाना आवश्यक है।

जो फसलें क्रतारों में बोई जायगी उन फसलों की निकाई गुड़ाई वर्तमान काल में जो नए कृषि-यन्त्र बन गए हैं, उनके द्वारा आसानी से होगी; यह कृषि-यन्त्र पशुओं तथा मनुष्यों द्वारा आसानी से खेतों में चलाए जा सकते हैं।

क्रतारों में कुछ फसलें तो अकेली बोई जाती हैं, कुछ फसलों के साथ दूसरी फसलों को मिलाकर भी बोन का स्वाज्ञ प्रचलित हो गया है। जैसे मूँगफली को पाँच क्रतारों के बाद अगहर की छठवीं क्रतार देने हैं। इसी प्रकार से लाल मिर्च की पाँच क्रतारों के बाद छठवीं क्रतार अण्डी की देने हैं।

क्रतारों में बोई जाने वाली जो फसलें अकेली बोई जाती हैं

उनके कट जाने के बाद दूसरी फसलें बोई जा सकती हैं। किन्तु जिनमें अरहर और अण्डी की भी कतारें दे दी जाती हैं, वह खेत साल भर तक अरहर और अण्डी की फसलों में फँसे रहते हैं। किन्तु तो भी कतारों में फसलों को बोना लाभदायक है। कतारों में उन्नति-प्राप्त फसलों को बोने में अधिक उपज होती है।

कतारों में फसलों को बोने के लिये रम्मा और खूँटी से निशान बनाकर बोने के लिये खुरपी को भी आवश्यकता होती है। खुरपी से कतारों में बीज बराबर दूरी पर गाड़ दिये जाते हैं। बाद में जब पौधे बने होते हैं, तो उन्हें उखाड़कर छिद्रा कर दिया जाता है।

कुछ फसलें ऐसी हैं, जो सपाट खेत में कतारों में बोई जाती हैं, कुछ फसलें ऐसी हैं, जिनके लिये ढुङ्गरी बनानी पड़ती है, जैसे गन्ना और आलू के लिये। इन फसलों को बोने के लिये पहिले खेतों में नालियां खोदी जाती हैं। इन नालियों को खोदने के लिये भी पहिले रम्मा और खूँटी की आवश्यकता होती है।

जब खेत में कतारों के निशान लग जायें तो फावड़े से नालियां खोदी जाती हैं, गन्ने की नालियां अधिकतर तीन-चार फीट की दूरी पर होती हैं। फसल बोने के तीन-चार मास पहिले गन्ने की नालियां बनाई जाती हैं। इन नालियों की कमाई भी फसल को बोने के पहिले करनी पड़ती है।

गन्ने की फसल तो नालियों में ही बोई जाती है। किन्तु आलू,

और शकरकंद की फसल नाली के पास जो रागी बनी हुई रहती है, जिसे कहीं-कहीं डुडुही भी कहते हैं, उस पर बोई जाती है।

कृतांगों में इन फसलों को इसलिये पर्याप्त दूरी पर बोते हैं कि इन फसलों के पौदे लग्वाइड में अधिक बढ़ते हैं। वर्षा-काल में या जब कभी पानी बरस जाता है तो इन पौदों की जड़ें पौदों का बोआ सम्हाल नहीं सकतीं। इस कारण पौदे भूमि पर गिर पड़ते हैं। जिन फसलों के पौदे भूमि पर गिर पड़ते हैं उनका पैदावार अच्छी नहीं होती। इसलिये कृतांगों में बोने के बाद जब यह पौदे पर्याप्त रूप में बढ़ जाते हैं तो कृतांगों के बीच खेत में जो मिट्टी रहती है उसे पौदों की जड़ों पर चढ़ा देते हैं। इस रीति से जब पौदों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ जाती है तो पौदे मजबूत पड़ जाते हैं फिर पानी के बरस जाने पर या हवा के झोंकों से नहीं गिरते।

उक्त बातों के वर्णन से यह पता चलता है कि बीजों के बोने के लिये चार रीतियाँ प्रचलित हैं। पहिली रीति तो छिटकवाँ है। दूसरी रीति कृतांगों में बोना है। तीसरी रीति खालिस फसलों का बोना है। चौथी रीति मिलवाँ फसलों का बोना है। उक्त रीतियों में से कृतांगों में खालिस फसलों का बोना अधिक लाभप्रद तथा वैज्ञानिक है। किन्तु जो फसलें इन रीतियों से अच्छी उपज न दें सकें, उन्हें छिटकवाँ रीति से दूसरी फसलों के साथ मिलाकर अवश्य बोना चाहिये।

बुवाई की इन रीतियों के अनिरिक्त आजकल एक ही क्रिम

की फसलों को चकों में बाँटने का रवाज भी प्रचलित किया जा रहा है। अधिकतर देहातों में जाकर देखा जाता है तो पता चलता है कि एक किसान ने अपने किसी खेत में बाजरा बोया है, तो दूसरा किसान उसीके पास ज्वार बोता है, तीसरा किसान पास में ही जव के लिये चौमाम छोड़ता है; चौथा किसान पास में ही गेहूँ बोता है। यह रीति वैज्ञानिक-दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। किसानों को आपस के सहयोग में सहयोग-समितियों द्वारा एक साथ होकर फसलों की चकबन्दी करना चाहिये।

फसलों की चकबन्दी में बुवाई

फसलों की चकबन्दी करने का यह अभिप्राय है कि गाँव के सभी किसान आपस में मिलकर यह तय कर लें कि जिन-जिन लोगों का गन्ना बोना हो वह गाँव के किसी खास रकबे में ही बोया जाय - अर्थात् गाँव के सब किसानों का गन्ना एक ही स्थान पर हो। इसमें बुवाई निकाई-गुड़ाई, सिंचाई, रखवानी, पेराई तथा गुड़ बनाने में आसानी होगी। तितर-बितर खेतों में बाँटने से वह सुविधाएँ जो सहयोग द्वारा प्राप्त हो सकती हैं, न हो सकेंगी।

जिस प्रकार से गन्ने की फसलों की चकबन्दी की जाय उसी प्रकार से गेहूँ, जव, मक्का अर्थात् सभी फसलों की चकबन्दी देहातों में करके फसलों को उगाना चाहिये, यदि देहातों में खरीफ तथा रबी की फसलों की चकबन्दी ठीक रीति से हो जाय तो

बुवाई की सभी वैज्ञानिक बातें जो आजकल के लिये उपादेय हैं सरलता से प्रयोग में आने लगे। फसलों की चकों में बुवाई करना वर्तमान काल में हरेक दृष्टि से आवश्यक है।

क्यारी-बरहे बनाना

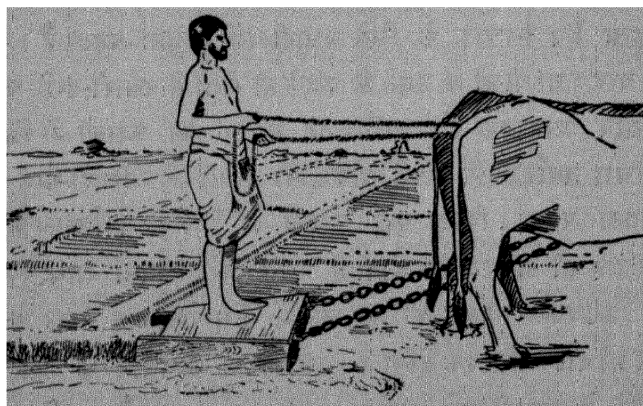
जब फसलों की बुवाई समाप्त हो जाती है तो कुछ फसलों में जिनमें कुओं से तथा अन्यान्य साधनों से सिंचाई का प्रबन्ध करना पड़ता है। सिंचाई के लिये क्यारी-बरहे बनाना पड़ता है। बुवाई के बाद तथा बीजों के उगने के पहिले ही खेतों में क्यारी-बरहे बनाना अर्थात् आवश्यक है। अधिकतर खरीफ की फसलों में जिनकी सिंचाई वर्षाकाल में अपने आप होती रहती है क्यारी-बरहे नहीं बनाना पड़ता। किन्तु कुछ फसलों में जिनमें वर्षा काल के बाद सिंचाई की आवश्यकता होती है, क्यारी-बरहे बनाना आवश्यक है।

अधिकतर रबी की फसलों में जैसे गेहूँ, जव, मटर इत्यादि की सिंचाई आवश्यक होती है। इन फसलों को बोने के बाद इनके खेतों में क्यारी-बरहे बनाना अर्थात् आवश्यक है। यदि क्यारी बरहे बोने के बाद तुरन्त न बना दिये जायेंगे तो सिंचाई का कार्यक्रम ठीक न होगा। क्यारी-बरहे बनाने के लिये लकड़ी का एक यन्त्र होता है, जिसे कहीं २ पर फरुही कहते हैं, कहीं-कहीं त्रैलों से चलने वाले को "रिज़ मेकर" कहते हैं।

इस यन्त्र की सहायता से रबी के खेतों में क्यारी बरहे बनाना चाहिये। बरहा उन बड़ी नालियों को कहते हैं जिनमें होकर सिंचाई

का पानी खेत में जाता है। बरहा बनाने के लिये खेत के ढाल और चौरसपने पर विशेषरूप से विचार करना पड़ता है। बरहे का पानी अपने आस-पास दोनों ओर बनी हुई क्यारियों में पानी वितरण करता है।

जब खेत में फरुही अथवा “रिजमेकर” द्वारा बरहे और क्यारियाँ बन जाँय तो खेतों की बुवाई का काम समाप्त समझना चाहिये। बुवाई के बाद खेतों की सिंचाई का कार्य क्रम आरम्भ होता है।



चित्र नं० २

रिजमेकर (क्यारी बरहे बनाने का यन्त्र)

कुछ फसलों की बुवाई जिसमें शाक-भाजी और मसाले की फसलों की गणना की जाती है। खेतों को तैयार करने के बाद पहिले क्यारी-बरहे बनाकर तब फसलों की बुवाई करते हैं। फसलों की बुवाई के पहिले या बाद में क्यारी बरहे बनाना आवश्यक है।

अधिकतर जहाँ कुओं में सिंचाई की जाती है वहाँ तो क्यारी और वरहे दोनों बनाये जाते हैं। किन्तु जहाँ नहरों में या तालाबों से दुगले द्वारा सिंचाई की जाती है वहाँ केवल वरहे बनाते हैं। जिस स्थान पर सिंचाई के जों साधन हैं उन स्थानों पर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार बुवाई के बाद तुरन्त उन रीतियों में क्यारी-वरहे बनाकर सिंचाई के साधन मुहड़या करना पड़ता है।

सिंचाई

बीज का वगण करने समय यह बात बतलाई गई है कि बीज भी अन्यान्य जीवधारियों के समान जीवधारी पदार्थ हैं। बीज को उगने के लिये नमी की आवश्यकता होती है। यह नमी बीज को जल द्वारा प्राप्त होती है। जब बीज उगकर पौदे का रूप धारण कर लेता है तो उसे बढ़ने तथा फलने फूलने के लिये पानी की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। जिस प्रकार में सभी जीवधारी पदार्थ भोजन के पश्चात् जल पीते हैं, बिना जल पिये कोई भी खाद्य-पदार्थ पेट के भीतर हज़म नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार में पौदे भी कोई ख़राब पानी की सहायता बिना ग्रहण नहीं कर सकते।

मनुष्यों और जानवरों का सारा भोजन जल में ही पकाया जाता है। चावल, दाल, जल में ही पककर भोजन के योग्य होते हैं। पशुओं का चारा, खली, चूनी, भूसी पानी में फुलाकर तैयार किया जाता है। ठीक इसी प्रकार से खेत की भूमि में पौदों की ख़राब के जितने पदार्थ मौजूद रहते हैं, या खाद-पाँस डालकर पौदों के लिये खेत में ख़राब तैयार की जाती है। उन सभी प्रकार की ख़राबों को पौदा अपनी जड़ों द्वारा तभी ग्रहण कर सकता है, जब कि यह सभी प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ पानी में घुलकर

घोल रूप में इस योग्य हो जायँ कि पौदों की जड़ें उसे आसानी से ग्रहण कर सकें।

उक्त बात को समझने के लिये शक्कर के शरबत का उदाहरण इस स्थान पर बहुत ही उपयुक्त होगा। जैसे शक्कर को पानी में घोलकर शरबत बनाकर पी लेने से शक्कर का अंश शरीर में पहुँच जाता है और ख़राक का काम देता है। उसी प्रकार से भूमि में पाई जाने वाली पौदों की सारी ख़राक खेत के पानी में घुलकर पहिले शरबत बन जाती है। इस शरबत बनी हुई ख़राक को पौदे अपनी जड़ों द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार धीरे धीरे खींच कर पीते हैं। भूमि का सारा भोज्य-पदार्थ पानी के संयोग द्वारा पौदे के तने, शाखों और पत्तियों में पहुँच कर पौदे को स्वस्थ तथा जवान बना देता है। पौदे पानी के संयोग द्वारा जो ख़राक ग्रहण करते हैं, वह पौदों के सभी भागों में पहुँचकर अपना काम करती है, पानी का आवश्यक अंश जो पौदों के लिये आवश्यक होता है, वह तो पौदों में रह जाता है। शेष पानी का अंश सूर्य की गर्मी के कारण पौदों से भाप बन कर उड़ जाता है।

इस प्राकृतिक क्रिया के कारण खेत का पानी खेत की सारी ख़राक को शरबत बनाकर पौदों में पहुँचाता रहता है और आप इन ख़राक की वस्तुओं को पहुँचाकर पौदे से बाहर हो जाता है। जब पौदा खेत की ख़राक ग्रहण करके फलता-फूलता है और फसलों के रूप में हमें पैदावार देने के योग्य हो जाता है तो वह स्वयं भूमि से ख़राक नहीं ग्रहण करता बल्कि उसमें पानी

का जो अधिक अंश मौजूद रहता है, वह म्वयं मृत्यु के ताप से भाप बनकर उड़ जाता है, जिससे पौदा सूख जाता है तो कहा जाता है कि फसल पक गई। पकी हुई फसल को ऐसी हालत में काटकर किसान उसमें धन-धान्य पैदा करते हैं।

उक्त वर्णन से पाठकों को इस बात की जानकारी प्राप्त हो गई होगी कि पानी पौदों के लिये कितनी जरूरी चीज है। खेत की उत्तम जुताई, खाद-पाँस, बीज की उत्तमता, शुद्धता, निरोगिता एक तरफ और पानी की आवश्यकता एक तरफ। यदि फसलों के पौदों के लिये पानी का पूर्ण प्रवन्ध न किया जायगा तो फसलों के पौदों द्वारा कभी भी उत्तम पैदावार प्राप्त न हो सकेगी। इसलिये फसलों के पौदों को पानी पहुँचाने के लिये किसानों को अनेकों मार्गों की खोज करना पड़ता है।

फसलों के पौदों को पानी कई रीतियों से मिलता है, जिसमें वे अपनी खुराक ग्रहण करते हैं। कुछ रीतियाँ तो फसलों के पौदों को पानी मिलने की प्राकृतिक हैं, कुछ रीतियाँ कृत्रिम हैं। प्रकृति जिन पदार्थों को उत्पन्न करती है, उन पदार्थों की रक्षा का भी प्रवन्ध करती है। यदि प्रकृति उन पदार्थों की रक्षा का प्रवन्ध न करे तो संसार के सारे पदार्थ नष्ट हो जायँ, इन पदार्थों के नष्ट होकर लोप हो जाने से सृष्टि का सारा कारोबार ही बन्द हो जाय।

प्राकृतिक रीतियों से पौदों को पानी वर्षा-काल में बादलों द्वारा प्राप्त होता है। वर्षा-काल में तो पानी पौदों को अधिकता से मिलता ही है। प्रत्युत इसके उमी वर्षाकाल का पानी भूमि पर पहाड़ों

पर तथा भूमि के भीतर अनेकों प्राकृतिक शक्तियों द्वारा संचित होकर एकत्रित रहता है। जिसे मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा कृत्रिम उपायों द्वारा प्रयत्न करके सिंचाई के रूप में पौदों के लिये खेतों में पहुँचाता है। जिसके द्वारा पौदें अपनी खुराक ग्रहण करते हैं। कभी-कभी वर्षाकाल के अतिरिक्त जाड़े तथा गर्मी की ऋतुओं में भी प्राकृतिक शक्तियों द्वारा पानी बरसता है, जिससे पौदों को पानी मिलता रहता है।

प्राकृतिक रीतियों से जो पानी खेतों को भूमि को प्राप्त होता है, वह प्राकृतिक रीतियों से ही खेतों में जमा भी रहता है जो पौदों की आवश्यकताओं के काम में आता है। उन प्राकृतिक रीतियों में से कुछ का वर्णन निम्न लिखित है।

वर्षा काल में जितना जल बादलों से गिरता है वह खुराक में बाँट जाने वाली फसलों के पौदों के लिये पर्याप्त होता है, इस कारण खरीफ की फसलों के पौदों की सिंचाई नहीं की जाती खरीफ की सारी फसलें बिना सींचे होती हैं। खुराक की इन फसलों में से धान, ज्वार, बाजरा, तिल, अण्डी, उरद, मूँग की काश्त बिना सिंचाई के ही वर्षाकाल में की जाती है। वर्षाकाल में जो जल प्राकृतिक रीतियों से पौदों को खेत द्वारा प्राप्त होता है वह सब का सब पौदों के काम नहीं आता। खेत की भूमि जितना पानी सोख सकती है, उतना पानी तो सोख लेती है। शेष पानी खेत की भूमि से अपने आप बह जाता है, जो तालाबों में एकत्रित होकर गाँव के आस-पास जमा रहता है।

गाँवों के आस-पास बहुत सी प्राकृतिक झीलें भी होती हैं। अधिकतर वर्षाकाल का पानी खेतों से बहकर इन प्राकृतिक झीलों में एकत्रित हो जाता है।

वर्षाकाल का जो पानी गाँवों के आस-पास तालाबों और झीलों में एकत्रित होने से बच जाता है, वह ग्राम के नालों द्वारा बह कर जिले तथा प्रान्त की छ्वांटी-छ्वांटी नदियों में पहुँच जाता है; यही छ्वांटी-छ्वांटी नदियाँ उस पानी को बहाकर देश की बड़ी-बड़ी नदियों तथा समुद्र में पहुँचा देती हैं।

उक्त प्राकृतिक रीतियों से वर्षाकाल का बहुत सा जल जो खरीफ की फसलों में पौदों के काम नहीं आता, बह जाता है। यह बहा हुआ जल प्राकृतिक रीतियों से ग्राम, प्रान्त तथा देश के प्राकृतिक जलाशयों में एकत्रित रहता है। जिसे मनुष्य जाति अपनी बुद्धि के बल से कृत्रिम उपायों द्वारा मिंचाई के साधनों से पौदों को पहुँचाता है।

वर्षाकाल का कुछ जल जो खेत की सतह से बह नहीं सकता वह खेत की मिट्टी के कणों द्वारा रिक़क़र भूमि के भीतर प्रवेश करता हुआ ऐसी कड़ी चट्टानों पर जाकर एकत्रित हो जाता है जो भूमि के खोदने पर कुओं द्वारा हमें प्राप्त होता है। इस प्रकार से वर्षाकाल में जो जल मनुष्य जाति को प्राप्त होता है। यदि वह वर्षाकाल में पौदों के उपयोग में नहीं आता और अन्यान्य प्राकृतिक रीतियों से भूमि के धरातल या गर्मतल में जाकर एकत्रित हो जाता है। तो उस जल को कृत्रिम उपायों द्वारा पौदों

के उपयोग में लाया जाता है, इसी कृत्रिम उपाय को सिंचाई कहते हैं।

कृत्रिम उपायों द्वारा सिंचाई करने के साधनों के पहिले कुछ प्राकृतिक साधन ऐसे हैं, जिनके द्वारा वर्षाकाल का पानी पौदों के उपयोग के लिये खेतों की भूमि में रंका जा सकता है, जिसमें पौदे की आरम्भिक आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती हैं। खेत की भूमि के महीन-महीन कणों में पानी को सोखने के लिये जल शोषण-शक्ति मौजूद रहती है, जो वर्षाकाल के जल को स्वयं सोखकर खेतों में संचय रखती है। खेत की भूमि में जो मिट्टी के महीन-महीन कण पाये जाते हैं, वह वर्षाकाल के पानी को अपनी आकर्षण-शक्तियों के द्वारा सोख लेते हैं। यह पानी मिट्टी के उन महीन कणों में भिनकर एक खोल रूप में हमेशा लिपटा रहता है। इसके अतिरिक्त जिन खेतों में खाद-पाँस अधिक पड़ी रहती है, अथवा सनई इत्यादि जोतकर हरी खाद दी जाती है, या अन्यान्य वानस्पतिक भाग स्वयं सड़-गलकर खेत में मौजूद रहते हैं, यह सब इस वर्षाकाल के पानी को सोख लेते हैं। जो खेत की मिट्टी में सदैव मौजूद रहता है और पौदों के काम आता है।

उक्त रीतियों से जो पानी खेत के धरातल में नहीं रुक सकता वह पानी भूमि की आकर्षण-शक्ति के कारण भूमि के महीन कणों द्वारा रिकता हुआ भूमि के भीतर घुसता चला जाता है। यही पानी कड़ी चट्टानों पर रुककर कुओं के द्वारा हमें पीने और सींचने के लिये मिलता है।

वर्षाकाल का जो पानी आकर्षण-शक्तियों द्वारा भूमि के भीतर जाकर कड़ी चट्टानों पर रुकता है, वह पानी भूमि के ऊपर ही दबाव के कारण उस चट्टान पर एकत्रित होकर जलाशय का रूप भूमि के भीतर नहीं बना सकता। प्रत्युत इसके वह जल पुनः ऊपर के या आस-पास के उन कणों में रिक्तता हुआ जहाँ उसके फैलने की गुंजाइश होती है, फैलकर सांते अथवा चश्मे का रूप धारण करके पुनः ऊपर आ जाता है। यह वात पहाड़ी सांतों या चश्मों में भली प्रकार से देखी जा सकती है। या मैदानी हिस्सों में कुओं को खोदने पर जब पानी मिलता है तो उसके चारों तरफ से यह सांते या चश्मे अपने आप आकर कूप में पानी फेंकने लगते हैं। इस आकर्षण-शक्ति के कारण वर्षाकाल का पानी भूमि के भीतर भ्रमण करता रहता है जो खेत की मिट्टी को हमेशा नम रखता है।

इस आकर्षण-शक्ति द्वारा जो जल खेत की मिट्टी के चारों ओर रहता है, वह मृत्त की गर्मी के कारण ऋतुओं के अनुसार सदैव-घटता बढ़ता रहता है, जिससे खेतों में बोये जाने वाले पौदों को आरम्भिकावस्था में उगने और बढ़ने के लिये इसमें नमी प्राप्त होती रहती है। इसी जल को अधिक मात्रा में रोकने के लिये खेतों की गहरी जुताई की जाती है तथा फसलों को बोने के बाद फसलों की निकाई-गुड़ाई करके खेत के धरातल को भुरभुरा रखते हैं जिससे कि प्राकृतिक-आकर्षण-शक्तियों द्वारा जो जल भूमि के गर्भतल से आकर खेतों के धरातल में एकत्रित हो वह मृत्त की गर्मी के कारण भाप बन कर उड़ न जाय।

खेत की भूमि के कण जिस प्रकार से आकर्षण-शक्ति द्वारा भूमि के भीतरी कणों से नमी सांगवते हैं, उसी प्रकार से अपनी साधारण शोषण-शक्ति द्वारा वायुमण्डल में जो नमी मौजूद रहती है, उसमें से भी जल का अंश खींच-खींचकर पौदों के लिये एकत्रित करने रहते हैं। इस साधारण-शक्ति द्वारा जो जल भूमि के कणों में अपने आप वायु द्वारा आकर एकत्रित होता है, वह किसी प्रकार से अलग नहीं किया जा सकता।

गर्मी के दिनों में सूर्य की गर्मी से यह जल अवश्य भूमि के कणों से भाप बनकर उड़ जाता है, किन्तु रात में जब वायुमण्डल नम तथा तर रहता है तो नमी अपने आप भूमि के कणों में एकत्रित हो जाती है। इस प्रकार से इस साधारण शोषण-शक्ति द्वारा खेत की मिट्टी के कणों में पानी अपने आप एकत्रित होकर पौदों की खुराक को तैयार करता रहता है।

इस साधारण शोषण-शक्ति के अतिरिक्त वायुमण्डल से नमी खींचने के लिये खेतों में ऐसे पदार्थों का होना भी निहायत ज़रूरी है, जो अपनी विशेषताओं के कारण वायुमण्डल से नमी खींचा करें। इस रीति से जो नमी वायुमण्डल से खेत की मिट्टी के तत्वों द्वारा एकत्रित होती रहती है, वह मुख्य शोषण-शक्तियों द्वारा हट्टा करती है। जैसे वर्षाकाल में नमक में वायुमण्डल से पानी अपने आप प्रवेश करके उसे घुला कर पानी बना देता है। इसी प्रकार से लोहे के पदार्थों में वायुमण्डल की नमी के कारण सुरचा लगकर वायुमण्डल की नमी लोहे को घुलाकर पानी बना देती है। यदि

इस प्रकार के पदार्थ खेत की मिट्टी में आवश्यक मात्रा में एकत्रित रहें, तो खेत की मिट्टी को वायुमण्डल से भी जल का पर्याप्त भाग मिलता रहे, जो पौदों की खुराक को धुलाने का काम दे सकता है। इस प्रकार से वायुमण्डल द्वारा खेत के धरातल को सदैव गर्मी-सर्दी के परिवर्तन से जल मिलता रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जाड़े की ऋतुओं में रबी की फसलों में आम के रूप में देखा जा सकता है। जो चतुर किसान हैं, वह अपने खेत के धरातल को जांतकर तथा निगा-गोड़ कर इस प्रकार से भुरभुरा रखते हैं कि खेत की मिट्टी में हरेक प्राकृतिक शक्तियों द्वारा जल का अंश एकत्रित होता रहे, जिससे खेत की मिट्टी में पाई जाने वाली खुराक धुल-धुलकर पौदों को मिलती रहे।

उक्त प्राकृतिक साधनों द्वारा जब भूमि का तथा वायुमण्डल का सारा जलांश पौदों के काम आ जाता है और पौदा निरन्तर बढ़ने लगता है तो उसकी जल सम्बन्धी आवश्यकताएँ निरन्तर बढ़ती जाती हैं। इस कारण खेत की मिट्टी को अधिक नम और तर करने के लिये खेतों को कृत्रिम उपायों द्वारा सिंचाई करके पानी पहुँचाना पड़ता है। कहीं-कहीं पर असींच फसलें भी होती हैं, जिनकी पैदावार बहुत ही कम होती है, जिससे कृषक जनता आर्थिक लाभ नहीं उठा सकती।

आर्थिक लाभ उठाने के लिये तथा फसलों से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिये किसानों को कृत्रिम उपायों द्वारा फसलों की सिंचाई करना बहुत ही आवश्यक है। हरेक स्थान में सिंचाई

के साधन भिन्न-भिन्न रूप में हैं। सिंचाई करने के लिये जल—गाव के कुओं, तालाबों, झीलों, नालों तथा देश की नदियों से नहरों के रूप में प्राप्त होता है।

वर्षाकाल का जो जल भूमि के भीतर बाहर बह कर या रिक्तकर एकत्रित रहता है। वही जल जब पौदों की आवश्यकता होती है तो कृत्रिम साधनों द्वारा सिंचाई के रूप में पहुँचाया जाता है। हर स्थानों में सिंचाई के साधन भिन्न हैं। जहाँ पर फसलों की सिंचाई के जो साधन आसानी से काम में लाये जा सकें अथवा जिन साधनों में परिश्रम और मजदूरी में कमी हो; उन स्थानों में उन्हीं साधनों को काम में लाना बुद्धिमत्ता है। फसलों की सिंचाई उपज को दृष्टि से करना बहुत ही आवश्यक है, किन्तु सिंचाई के साधनों पर इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सिंचाई में जो खर्च पड़े वह फसल की पैदावार से बगल हो जाय; साथ ही साथ उपज से लाभ भी हो जिससे किसानों की आर्थिकावस्था सुधरे।

सिंचाई के उन साधनों को कमी भी भूलकर उपयोग में नहीं लाना चाहिये, जिनके द्वारा व्यय अधिक हो और लाभ कम हो। खेतों में जिन-जिन साधनों से सिंचाई की जाती है। उन-उन साधनों से निम्नलिखित दो मार्गों द्वारा खेत सींचे जाते हैं।

(१) तोड़ की सिंचाई—वह सिंचाई है, जब खेत का धरातल उस जलाशय में नीचे रहता है, जिसमें कि खेत की सिंचाई की जाती है। इस मार्ग से पानी खेत में सीधे अपने आप नालियों द्वारा

पहुँच जाता है, जिसमें खेतों की सिंचाई अपने आप आसानी से हो जाती है। इस सिंचाई को तोड़ की सिंचाई के नाम से पुकारा जाता है।

(२) डाल की सिंचाई वह सिंचाई कहलाती है, जब खेत का धरातल सिंचाई के जलाशय से ऊँचा होता है। ऐसी अवस्था में जलाशय से पानी यन्त्रों द्वारा उठाकर खेत में पहुँचाया जाता है; तब फसलों की सिंचाई होती है। इस रीति की सिंचाई को डाल की सिंचाई कहते हैं।

उक्त दोनों रीतियों से सिंचाई हरक साधनों से की जाती है। इन साधनों में सिंचाई करने के लिये जलाशयों में जो यन्त्र प्राचीन काल से व्यवहृत होते आये हैं उनका तथा उन यन्त्रों का भी वर्णन जो इस वैज्ञानिक-युग में कृषि की उन्नति की दृष्टि से आविष्कृत किये गये हैं : पाठकों की जानकारी के लिये किया जाता है। जहाँ पर जो साधन उपयुक्त हों वहाँ पर वह साधन तथा कृषि-यन्त्र सिंचाई के लिये आर्थिक-दृष्टि से उपयोग किये जा सकते हैं।

फसलों की बुवाई और खारी-बरहे बनाने के पश्चात् फसलों की सिंचाई की जाती है। खरीफ की फसलें जो वर्षा-काल में बोई जाती हैं, उन्हें भी यदि उनमें से कुछ जाड़े की ऋतु में तैयार होती हैं तो उनकी तथा रबी की तमाम फसलों की—शाक-भाजी-मसाले की फसलों की तथा गन्ने इत्यादि धन दायक फसलों की सिंचाई करना अतीव आवश्यक है।

कुएँ द्वारा सिंचाई के साधन

ग्रामों में अधिकतर कुएँ खोदकर कुआँ द्वारा खेतों की सिंचाई करने का रवाज अधिकतर प्रचलित है। कुएँ द्वारा सिंचाई करने के कई एक साधन हैं। उन साधनों में से सबसे पहिला साधन उन किसानों के लिये जो थोड़े क्षेत्रफल में कृषि करते हैं और वहाँ पर सिंचाई के कोई अन्यान्य साधन मौजूद नहीं हैं, जिसके द्वारा सिंचाई की जा सके— तो मजदूरी हानत में बेचारा किसान देकली द्वारा खेतों की सिंचाई करता है।

देकली द्वारा खेतों की सिंचाई

उन ग्रामों में जहाँ भूमि के भीतर बालू की तहें अधिक गहराई तक मिलती हैं। जिससे किसान प्राचीन रीतियों से स्थायी कुएँ नहीं बना सकते, न पैसा खर्च करके नवीन साधनों द्वारा तह नोड़ कुएँ जिसे 'ट्यूबवेल' के नाम से पुकारा जाता है, बनवा सकते हैं; ऐसे ग्रामों में प्राचीन काल से ही किसान लोग हर साल अपने खेतों में अपने परिश्रम से एक छोटी सी कुआँ खोद लेते हैं। यह कुआँ बालू की तहों में कहीं पर थोड़ा सा पानी दम-बागह फीट नीचे भूमि के भीतर दे देती है। इस कुएँ में एक लम्बी लकड़ी गाड़कर जिसका पिछला भाग मोटा तथा बज्रनी होता है; उसे छोड़ देने हैं। इसके दूसरे भाग में रस्सी बांधकर नीचे मिट्टी का घड़ा या लोहे की वाल्टी बाँध देने हैं। एक आदमी हाथ से रस्सी को खींच-खींच कर कुएँ में डालता है। जब घड़ा

कुएँ में जाकर पानी से भर जाता है तो वही आदमी उस रस्सी का हाथ में ऊपर खींचता है; लकड़ी का दूसरा मिरा वजनी होने के कारण भूमि की ओर गिरता जाता है, आदमी के सहारे थड़ा पानी में भरकर ऊपर आ जाता है, जिसे आदमी पास में ही किर्मी क्यारी में उड़ेल देता है। उस पानी से बरहों और क्या-कियों द्वारा धीरे-धीरे खेतों की सिंचाई होती है। इस रीति से एक आदमी गंजाना एक बिम्बा से अधिक खेत नहीं सींच सकता। ढंकली द्वारा खेतों की सिंचाई केवल बोधे दो बोधे आदमी बड़ी कठिनता से कर सकता है। इस रीति से कुआँ भी हर साल बनाना पड़ता है। यह बहुत ही पुरानी प्रथा कुआँ द्वारा सिंचाई करने की है। जहाँ पर यह प्रथा अभी तक प्रचलित हो वहाँ पर किसानों का सहयोग-समिति स्थापित करके कृषि-विभाग द्वारा वारिद्ध करवा कर ग्यारह कुएँ बनाकर नवीन रीतियों द्वारा सिंचाई करना चाहिये।

रहट द्वारा सिंचाई

कुएँ में सिंचाई करने का दूसरा साधन रहट है। रहट लोहे का एक यन्त्र है, जो बहुत से स्थानों में प्रचलित है। यह यन्त्र सिंचाई का बहुत पुराना यन्त्र है। वर्तमान काल में इसमें अनेकों प्रकार के सुधार हो गए हैं; जिनके द्वारा सिंचाई करने से लाभ होता है। जिन कुआँ में पानी दस फीट के नीचे मिल जाता है, उन कुआँ में रहट द्वारा सिंचाई करने से लाभ है।

दस फीट से लेकर तीस फीट के गहरे कुआँ में रहट द्वारा

मिंचाई की जा सकती है। इसमें अधिक गहराई में जिन कुओं में पानी हो—उनमें रहट द्वारा मिंचाई करने में लाभ नहीं हो सकता। कुओं में जो रहट लगाये जाय उनके लगाने के पहिले कृषि-विभाग के अधिकारियों की राय ले लेना जरूरी है। रहट दो प्रकार के आजकल प्रचलित हैं। एक प्रकार का रहट तो कुएँ में फिट करने के बाद एक राड द्वारा उमका पहिया कुएँ में कुछ दूरी पर पहिये में फिट कर दिया जाता है; जिसे एक आदमी और एक जोड़ी बैल या भैसा आसानी से चला सकता है; अथवा कहीं-कहीं पर रहट को चलाने के लिये फँट भी बैलों की तरह काम में लाये जाते हैं।

यदि कुएँ की गहराई खेत के भगतल से जहाँ पर पानी मौजूद है, दस फीट है, तो प्रति घंटा लगभग सात हजार गैलन पानी रहट द्वारा खींचा जा सकता है। यदि रहट इस गीति से बराबर दस घंटा प्रतिदिन चलता रहे तो दिन भर में लगभग एक एकड़ के मिंचाई आसानी से हो सकती है।

यदि कुएँ के पानी की गहराई बढ़ती जायगी तो रहट में पानी उठाने के लिये जो वाल्टियाँ लगती हैं, उनकी संख्या भी बढ़ती जायगी इसके अनिश्चित पानी की मात्रा भी कम होती जायगी। पर्याप्त तीस फीट की गहराई तक पहुँचने-पहुँचने इस रहट द्वारा प्रति घंटा ढाई हजार से लेकर—तीन हजार गैलन तक पानी प्रति घंटा निकाला जा सकता है, जिससे लगभग आधा एकड़ तक दिन भर में सींचा जा सकता है।

उक्त रीति से जो खेत सींचे जायेंगे, उन खेतों में पानी खेत के धरातल में ढाई इञ्च से लेकर ३ इञ्च तक गिभ जायगा। जो पौदों के लिये पर्याप्त होगा। मिंचाई द्वारा इस पानी की वही मात्रा होगी जो वर्षाकाल में वर्मने से जितना पानी ढाई से तीन इञ्च तक खेतों में गिभकर जमा हो जाता है। एक बार इतनी गहराई तक मिंचाई कर देने से लगभग साठ-सत्तर हजार गैलन पानी प्रति एकड़ मिंचाई से खेतों में पहुँच जाता है, जो फसलों के लिये पर्याप्त है। एक गैलन पानी वजन में लगभग पाँच सेर के होता है। ऋतुओं के अनुसार मिंचाई में पानी की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। ग्रीष्मकाल में मिंचाई द्वारा खेत की मिट्टी अधिक पानी सोखती है, जाड़े में मिंचाई द्वारा खेत की मिट्टी में पानी कम खर्च होता है।

जिन कुओं में रहट लगाया जाता है, उसमें केवल रहट द्वारा ही मिंचाई हो सकती है। उस कुएँ में चरमे द्वारा मिंचाई करना असंभव हो जाता है। इसलिये जिन कुओं में मिंचाई के लिये रहट लगाना हो किमी प्रसिद्ध तथा विश्वनीय कम्पनी का रहट कृषि-विभाग की राय से मँगाकर लगाना चाहिये।

रहट एक स्थायी रूप से मिंचाई का यन्त्र है जो लगभग १५०) से लेकर २००) तक में खर्च कर कुएँ में फिट किया जा सकता है।

रहट की वृष्टियों को दूर करके इस प्रान्त के कृषि-विभाग के ज्वाइंट डाइरेक्टर श्री सी० मायादास साहब ने रहट में सुधार

किया है जो उनके नाम से प्रसिद्ध है। उसे तथा अन्यान्य कम्पनियों के बने हुये रहट का व्यवहार सिंचाई के लिये किया जा सकता है। रहट को इस्तेमाल करने के लिये उसका तरीका भी सीख लेना चाहिये। रहट के पुरजों में तेल लगाने रहना चाहिये। जो आसानी से चलता रहे। जो वाल्टियाँ खराब हो जायें, उन्हें बदल कर नई वाल्टियाँ लगाकर रहट का व्यवहार निरन्तर सिंचाई के लिये किया जा सकता है।

चरसे द्वारा सिंचाई

सिंचाई के लिये अत्यन्त प्राचीन काल से ही गांवों में कुएँ खोदे जाते थे। इन कुओं द्वारा आपस के सहयोग से किसान लोग अपने खेतों की सिंचाई करते थे। सिंचाई के लिये गांव का कोई धनी मानी पुरुष कृषि-क्षेत्रों के बीच में जिसे देहातों में 'मेवार' कहते हैं, कूप खुदवाता था। कूप खुदवाने में गांव के सभी व्यक्ति सहयोग करते थे। जिन कुओं में भूमि के गर्भतल में अच्छा सोता मिल जाता था; उनमें आठ चरसे चलते थे। आज भी देहातों में भ्रमण करने से ऐसे बहुत से कुएँ मिलेंगे जिनमें आठ चरसों द्वारा पानी निकाल कर सिंचाई की जाती है।

कुएँ के चारों ओर पौदर बनाई जाती है। पौदर का वह भाग जो कुएँ की जगह के पास होता है, ऊँचा रहता है। उसके बाद का भाग जिस पर बैल चलते हैं, ढाल बनाया जाता है, जिससे बैल और आदमियों को चलने में कष्ट न हो। इस पौदर पर कुएँ की जगह

से मिली हुई जो छूड़ी या खम्भे रहते हैं उस पर लकड़ी रखकर धुरई रखते हैं। धुरई बाँस की बनाई जाती है। कहीं-कहीं लकड़ी को भी धुरई बनाती है।

एक पौदर पर दो पुरवट के चलाने का प्रबन्ध रहता है। धुरई के ऊपर वृत्त की बनी हुई गड़ारी रखते हैं। इस गड़ारी में दोनों ओर छेद होता है, जिसमें लोहे की साम लगी रहती है। गड़ारी के दोनों छेदों में वृत्त का 'गड़ेर' छोड़कर तब इसको चलाने के व्यवहार में लाते हैं।

इस धुरई के ऊपर जो गड़ारी रखी जाती है, उस पर सनई के रेशे के बने हुये रस्से जिसे कहीं-कहीं नार भी कहते हैं, लटकाया जाता है। वह सिरा जो गड़ारी से होकर नार का कूप में लटकता है उसमें चमड़े का चरमा जिसे मोट भी कहते हैं, नार के 'पनवास' द्वारा मोट में बांध दिया जाता है। नार का दूसरा सिरा पानी की गहराई से कुछ लम्बा छोड़कर जुग या मार्ची में बांध कर बैल में नाथ दिया जाता है।

चरमा गाँवों में मरे हुये पशुओं के चाम को सिखा कर बनाते हैं चरमा बैलों की ताकत के अनुसार छोटा-बड़ा बनाया जाता है और गोलाई में काटा जाता है। जिसमें चमड़े के छोटे-छोटे सोलह टुकड़े किनारों पर सीकर जिसे 'दियाला' कहते हैं, तब चरसे तैयार किये जाते हैं।

इन सोलहों दियालों में छेद करके 'सिंहार' की लकड़ी जो लचीली होती है, उसका 'धोरईमेड़रा' बनाकर चरसे को सनई

कं रेशे की पतली रस्सी से गुड़ते हैं। इस प्रकार से चरमा तैयार हो जाता है। उक्त कार्यों के करने के पहिले चरमों में सरसों का तेल पर्याप्त मात्रा में लगभग दो सेर तक मुखाने है, जिससे चमड़ा टिकाऊ हो जाता है।

जब नार, मोंट, धुगई, गड़ार्गी सब सामान तैयार हो जाता है तो कुण पर आठों पुरवट चलने लगते हैं। आपस के सहयोग से इन आठों पुरवट का पानी एक किमान अपने खेत में ले जाता है। शेष मात्र किमान उसके खेत में 'हँड' करते हैं। जब उसका खेत दो-तीन दिन में सिंच जाता है, तो दूसरा किमान पानी पाता है। इस तरह से वारी-वारी से सभी किमान पुरवट द्वारा सिंचाई करते हैं।

पुरवट के सम्बन्ध में विचार करने से पता चलता है कि जिस सहयोग का प्रचार आजकल जोगों से किया जा रहा है। उसका बीजारोपण हमारे देश में प्राचीन काल में ही हो चुका था। सिंचाई के मामले में सहयोग द्वारा ही किसानों के खेत चरसे द्वारा सींचे जाते थे। यदि सिंचाई में आपस में सहयोग की प्रथा का प्रचार न होता तो एक किमान एक पुरवट से अपने खेतों के सींचने में बहुत दिन लगा देता।

पुरवट में दो चरमों के बीच में चरमों को छँदने के लिये एक छिदवा की ज़रूरत होती है। चरमों को चलाने के लिये प्रत्येक पौदर पर दो 'हँकवा' रहते हैं। इस प्रकार से एक कुण पर ८ हँकवा ४ छिदवा अर्थात् १२ आदमी पुरवट को चलाने में

काम करते हैं। खेत में जो आदमी पानी को बरहों द्वारा क्यारियों में मींचता है उसे 'बेरवाह' कहते हैं। जिन नालियों द्वारा पानी खेत में जाता है। उसे देखने के लिये भी एक आदमी की आवश्यकता होती है, जिससे पानी कट कर वह न जाय।

लगभग १५-१६ पुरवट से एक एकड़ खेत की मिंचाई ढाई डब्ब से लेकर तीन डब्ब तक की जाती है। एक पुरवट से लगभग चार हजार गैलन पानी प्रति दिन चरसों द्वारा निकाला जाता है एक पुरवट की मजदूरी चन्द्रवटा-डिमांस्टेशन फार्म, दादपुर पर ॥॥ प्रति-दिन उन किसानों को दी जाती है, जो अपने पुरवट से प्रातः-काल ६ बजे से शाम को ५ बजे तक पुरवट चलाते हैं। उक्त फार्म पर अनुभव करने से पता चला है कि पुरवट द्वारा मिंचाई करने में सात-आठ रुपया प्रति एकड़ एक बार की मिंचाई में खर्च पड़ता है। विशेषता इसमें यही है कि पुरवट द्वारा मिंचाई करने में गांव के मजदूर, घर के जानवर, सभी लोग काम करते हैं। इस काम में जो पैसा खर्च होता है, वह ग्राम के ही लोगों की जेब में जाता है, जिससे उनकी बेकारी दूर होती है, इस प्रथा से गांवों में ही मजदूरों का काम मिल जाता है। इसलिये इस प्रथा का राजा अभी तक देहातों में प्रचलित है।

कुछ स्थानों में चरसे में मुधार किया गया है, जिसमें नीचे भाग में चरसे में चमड़े का एक नली लगाई जाती है, जिसे मूंडिया चरसा कहते हैं। इस चरसे में एक पतली रस्सी लगी रहती है जो जगत से मिली हुई एक गड़ारी से जिसका सम्बन्ध हँकवा

से रहता है, रस्से के साथ-साथ बंधी रहती है। जब चरमा कूप से निकल कर जगत पर आ जाता है तो चरसे का हँकवा इस पतली रस्सी को खींच कर कुछ ढीला कर देता है, जिससे चरम का पानी कुएँ के ओड़ान में आप से आप गिर जाता है। सँडिया चरसे में छिद्वा की ज़रूरत नहीं होती।

कुछ स्थानों में पुरवट में बजाय दो बैल एक एक मजदूर नर भैंसा द्वारा भी पुरवट चलाने हैं, जिस प्रकार से बैलगाड़ी में आगे वाला बैल दोनों तरफ़ से रस्सी लगाकर जोड़ते हैं। उसी प्रकार से भैंसे को भी पुरवट में अकेला जोड़कर चलाने हैं। इस प्रकार से सालह बैलों के बजाय आठ नर भैंसों से ही आठ पुरवट चलाया जाता है। इन तरीकों से चरसे की मिंचाई में मजदूरों की बचत होती है।

घर्रा

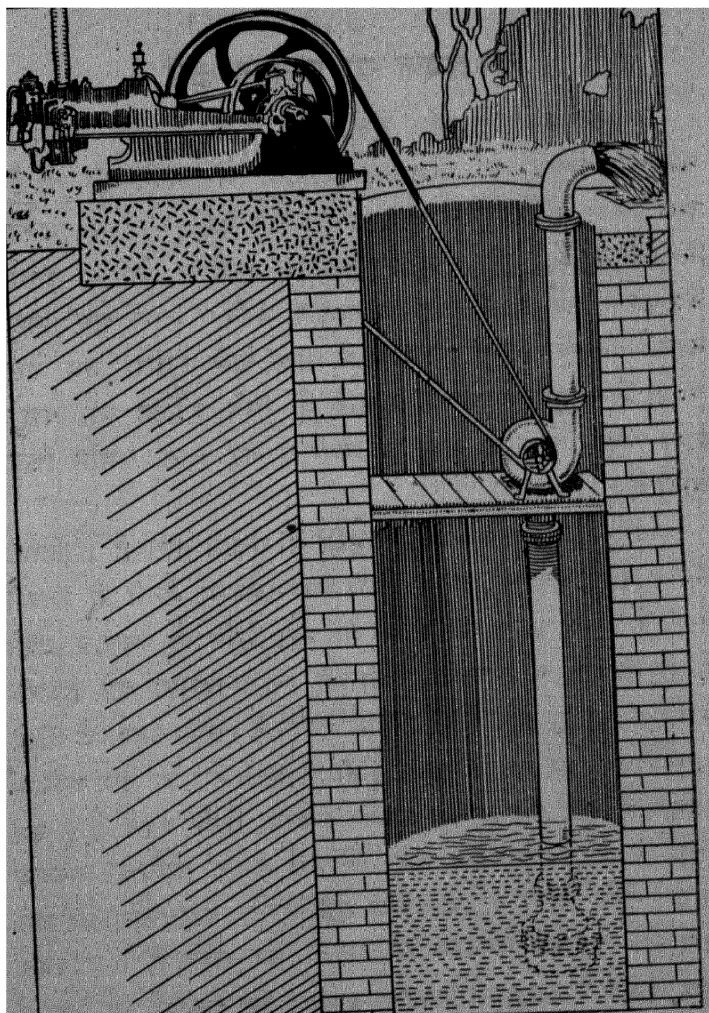
चरसे को चलाने के लिये कहीं-कहीं पर मजदूर भी लगाये जाते हैं। एक चरसे को खींचने के लिये कम से कम छः और अधिक से अधिक सात आदमी लगाये जाते हैं। यह मजदूर घर्रा को दौड़-दौड़कर चलाने हैं। इस रीति को देहानों में घर्रा कहते हैं। एक घर्रा से दो पुरवट का पानी निकाला जाता है। एक घर्रा के चलाने में III) से लेकर III-) तक खर्च पड़ता है। अधिकतर वह लोग घर्रा से मिंचाई करते हैं, जिन्हें मिंचाई की जल्द ज़रूरत रहती है। देर में मिंचाई करने से फ़सल खराब हो जाने का अंदेशा रहता है। इन लोगों को छोड़कर जहाँ मजदूर प्रचुरता

से कम मजदूरी पर मिलते हैं, वह लोग भी घर्ग द्वारा चरसे से मिंचाई करते हैं।

जिन कुओं में आठ पुरवट का पानी नहीं रहता, उन कुओं में तीन पौदर बनाकर छः पुरवट द्वारा पानी निकालते हैं। जिन कुओं में पानी और कम होता है। उसमें दो पौदर बनाकर चार पुरवट चलाते हैं। इसी प्रकार छोटी कुड़ियाँ में एक पौदर बनाकर दो पुरवट या एक पुरवट से भी खेतों की मिंचाई देहातों में किसान लोग करते हैं।

बोरिंग

वर्तमान काल में जब से प्रान्तीय सरकारों ने ग्राम-मुधार का काम अपने हाथ में लिया है, तब से ग्रामों में जिन कुओं में चरसे द्वारा मिंचाई की जाती है, उनकी बोरिंग का भी प्रबन्ध कर दिया गया है। इस काम में जिले के ग्राम-मुधार-संघ द्वारा प्रत्येक कुओं की बोरिंग में जितना खर्च पड़ता है, उसका तिहाई सरकारी रुपये से दिया जाता है। शेष दो हिस्सा गाँव वालों को देना पड़ता है। अधिक से अधिक चार्लस रुपये तक ग्राम-मुधार-संघ द्वारा हरेक कुएँ की बोरिंग में सहायता मिल सकती है। जिन कुओं में चरसा चलता हो यदि उनमें पानी की कमी होता तो ग्राम-मुधार-संघ की सहायता से ऐसे कुओं की बोरिंग कराना अतीव आवश्यक है। जिससे कुएँ में पर्याप्त पानी चरसों के चलाने के लिये मिल सके।

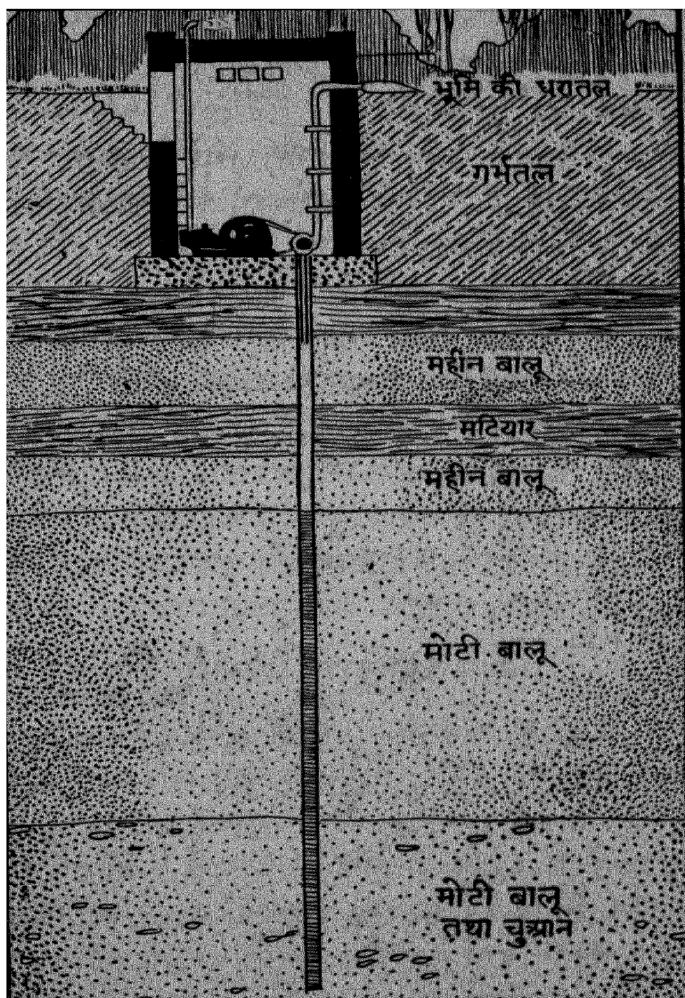


चित्र नं० ३ ट्यूबवेल या पाताल कुण्ड.

ट्यूबवेल या पाताल कुएँ

वर्तमान काल में कृषि की उन्नति के लिये जिस प्रकार से अन्यान्य विषयों में वैज्ञानिक रीतियों से उन्नति की गई है। उसी प्रकार से सिंचाई के लिये पाताल तोड़ कुएँ की भी तरकीबें निकाली गई हैं। भूमि के भीतर वैज्ञानिक यन्त्रों से बोरिंग अर्थात् छेद करके लोहे के नल गलाये जाते हैं। बोरिंग द्वारा कुएँ बहुत गहराई तक खोद जाते हैं। भूमि के भीतर बोरिंग द्वारा जब ऐसा चश्मा मिल जाता है कि वह सिंचाई के लिये इंजिन या विद्युत द्वारा पर्याप्त जल दे सके तो बोरिंग का काम समाप्त किया जाता है।

बोरिंग करने समय जो नल भूमि में गलाये जाते हैं। उनकी परिधि चार इञ्च—६ इञ्च जैसी आवश्यकता होती है रखी जाती है। इसी प्रकार से लोहे के जो नल भूमि में गलाये जाते हैं, वह भी सादे और जालीदार होते हैं। कृषि-विभाग का इञ्जीनियरिंग विभाग ट्यूब वेल का काम करता है। इस कार्य के लिये सरकारी तौर पर नकदी सहायता भी दी जाती है। जो लोग अधिक क्षेत्रफल में फार्म बनाकर वा चकबन्दी करके खेती करने हैं। उन लोगों के लिये ट्यूबवेल द्वारा सिंचाई करना अधिक लाभप्रद होगा। ऐसे लोगों के अतिरिक्त छोटे-छोटे कृषक सहयोग द्वारा भी ट्यूबवेल बनवाने का प्रयत्न कर सकते हैं। ट्यूबवेल द्वारा कुओं से जो पानी निकाला जाता। वह इञ्जन या विद्युत द्वारा ही निकाला जा सकता है। ट्यूब वेल बनवाने में कम से कम



चित्र नं० ४ कुएँ में बोरिङ्ग करना
कृ० वि०—४

सान-आठ हजार रुपया खर्च होते हैं। जिससे ५० एकड़ के फार्म की सिंचाई की जा सकती है। ऐसे कुएँ कृषि-विभाग की राय लेकर ही बनवाना सदैव उपयुक्त होगा। ऐसे कुओं के बनवाने के लिये प्रान्तीय-कृषि विभाग से लिखापढ़ी करके सभी बातें तय करने से विशेष लाभ होता है।

कुएँ द्वारा जिन-जिन रीतियों से सिंचाई की जा सकती है। उनके अनिश्चित वर्तमान काल में जो उन्नति प्राप्त साधन वैज्ञानिक रीतियों में एकत्रित किए गए हैं, उनका वर्णन किया जा चुका। इस सम्बन्ध में इतना और बतला देना आवश्यक है कि कुएँ का जल भूमि के भीतर अनेकों चट्टानों को पार करके एकत्रित होता है। इस कारण इस जल में पौदों की आवश्यक खुराक घुली रहती है। जिसे खाकर पौधे अधिक पैदावार देते हैं। इसलिए कृषि जल द्वारा सिंचाई करना लाभप्रद है।

तालाबों द्वारा सिंचाई

कुएँ के अनिश्चित गांवों में जिस प्रकार से प्राचीन काल में अन्योन्य काम धार्मिक दृष्टि से किये जाते थे; उसी प्रकार से तालाब भी खुदवाये जाते थे। इन तालाबों में पशुओं के पानी पीने का भी प्रबन्ध रहता था। गांव के लोग इन तालाबों से सिंचाई भी करते थे। अधिकतर गांव का ज़मींदार किसानों को ऐसे तालाबों या बांध के बनाने में मदद करता था; जिनसे किसानों की सिंचाई की जाती थी। ऐसे तालाब या बांध जिसमें वर्षा काल में पानी

जमा किया जाता था, उससे जाड़े में गन्नी की फसलें मीची जाती थीं।

अभाग्यवश मौजूदा जमाने में समय के उलट-फेर से इन तालाबों तथा बांधों की मरम्मत नहीं हुई जिससे बहुत से तालाब तथा बांध अब इस योग्य नहीं रह गये। जिनके द्वारा मिंचाई उतने क्षेत्रफल में की जा सके जितने क्षेत्रफल में पहिले की जाती थी। ग्रामसुधार के इस जमाने में ग्राम के तालाबों और बांधों के सुधारने की ओर भी लोगों का ध्यान गया है। अब बहुत से स्थानों में मिंचाई के तालाबों और बांधों की मरम्मत होने लगी है।

कुछ समय पहिले गांवों में जमींदारों ने लाभवश ऐसा काम आरंभ कर दिया था कि गांव के तालाब तथा पड़तों जुन कर खेती करने के लिये मजदूरी बना लिये गये। कहीं-कहीं तो तालाबों तथा बांधों पर वारा भी लगा लिये गये। अधिकतर बांधों तथा तालाबों का वह भाग जिसमें मिंचाई का पानी जमा रहता था। धान की खेती के काम में आने लगा है। किन्तु जिन स्थानों में अभी तालाब और बांध हैं उनसे मिंचाई का काम अब भी पर्याप्त क्षेत्रफल में होता है।

गांव के तालाबों या बांधों का धरानल खेत में नीचा होता है। इसलिये इन तालाबों तथा बांधों में पानी उठाने के लिये कुछ यन्त्र बनाये जाते हैं। जिनसे पानी उठाकर ऊपर लाया जाता है। तब खेतों की मिंचाई की जाती है। तालाबों और बांधों में जिन

यन्त्रों से पानी उठाया जाता है, उनका वर्णन जानना अतीव आवश्यक है। कुछ यन्त्र तो ऐसे हैं जो प्राचीन काल से ही हमारे देश में इस्तेमाल होते रहे हैं। कुछ यन्त्र आजकल के जमाने में कृषि-वैज्ञानिकों द्वारा बनाकर जनता में प्रचलित किये गये हैं।

दुगला या बेड़ी द्वारा सिंचाई

तालावां या बांधों में जिनमें वर्षाकाल में पानी इकट्ठा हो जाता है, उसे जाड़े में दुगला से उठाकर रूखों के खेतों की सिंचाई करने हैं। दुगला बाँस के पतले-पतले टुकड़ों द्वारा ग्रामों में 'धरिकार' जाति के लोगों द्वारा तैयार किया जाता है। हेल्ला, भंगी, धरिकार, जाति के लोग देहातों में बाँस से अनेकों चीजें बनाने हैं जो किसानों के उपयोग में आती हैं। दुगला भी बाँस द्वारा बनाया जाता है। एक दुगले में कम से कम एक गैलन और अधिक से अधिक दो गैलन पानी एक बार में उठाया जाता है।

बाँस के इन दुगलों में सनई या पटमन के रेशे की पतली पतली किन्तु मजबूत रस्मियाँ बाँधने के लिये बटी जाती हैं। इन रस्मियों को दुगले की गोलाई में दोनों ओर बाँधने हैं। एक तरफ बाँधने में रस्मी में दो भाग नीचे की ओर करके दो छेदों में बाँध देते हैं। इस प्रकार से दुगले में दोनों ओर दो रस्मियाँ आठ दस फीट लम्बाई की लगा देते हैं। इन रस्मियों के सिरों पर हाथ से पकड़ने के लिये लकड़ी की एक मजबूत खूँटी लगाने हैं।

जिसे पकड़कर मजदूर पानी को दुगलों में भरकर तालाब से निकालता है।

तालाब के जिस किनारे से पानी निकाला जाता है। वहाँ पर दोनों ओर मिट्टी का ऊँचा चौतरा बना लेते हैं। इस चौतरा पर दोनों ओर खड़े होकर एक दुगले को दो आदमी चलाते हैं। एक दुगला जब दो आदमी से चलाया जाता है तो उसे 'दो'कड़ी' कहते हैं। उमी के पास यदि उमी गीति में दो दुगला चार आदमी चलाते हैं तो उसे 'चौ'कड़ी' कहते हैं। यदि तीन दुगला छः आदमी चलाते हैं तो उसे 'छ'कड़ी' कहते हैं। अधिक से अधिक छः आदमी तीन दुगलों द्वारा एक स्थान से तालाब से पानी निकालते हैं।

जब तालाब का पानी खेत के धरातल से लगभग ३ ४ फीट गहरा रहता है तो यह दुगले पानी निकाल कर लगभग दस घंटे में एक एकड़ की मिंचाई कर लेते हैं। यदि पानी तालाबों में चार फीट से गहराई पर हुआ तो एक स्थान पर दुगला लगाने के बजाय दो स्थानों पर दुगला लगाया जाता है। एक स्थान से पानी उठाकर दूसरे स्थान पर पानी पहुँचाया जाता है; तब दूसरे स्थान पर से दुगले द्वारा पानी उठाकर खेत में पहुँचाया जाता है। ऐसी अवस्था में खर्च अधिक पड़ता है; खेत भी क्षेत्रफल में कम सींचा जाता है। तालाबों और बाँधों से पानी उठाकर मिंचाई करने का यह प्राचीन तरीका और यन्त्र है।

दुगलों की कीमत देहातों में प्रति दुगला तीन या चार आना होती है। तीन दुगलों की कीमत कम से कम बारह आना और

अधिक से अधिक एक रुपया होती है। प्रत्येक दुगले में दो-दो आना की रस्मियाँ लगती हैं। तीन दुगलों में छः आना की रस्मियाँ पर्याप्त होंगी।

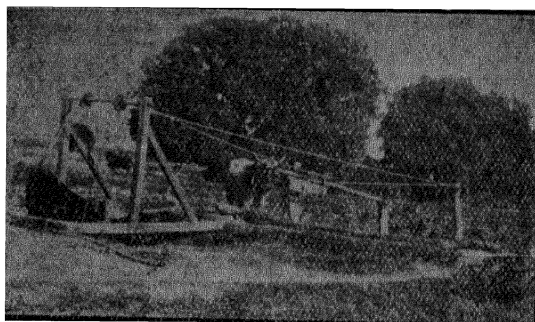
देहातों में दुगलों के लिये तीन आना से लेकर चार आना तक खर्च करने पर गोजाना मजदूर मिलते हैं। एक दुगला चलाने में चार मजदूरों की जरूरत होती है। दो मजदूर एक मर्तवे में लगभग एक घंटा दुगला चला सकते हैं। इसके बाद वह थक जाते हैं तब दो आदमियों की जोड़ी उन्हें छुड़ा देती है। वह लोग मुस्ताने लगते हैं। इस रीति से तीन दुगलों में बारह मजदूरों की जरूरत होती है। यह बारह मजदूर दिन भर मेहनत करके एक एकड़ की मिंचाई करते हैं। जब कि खेत तालाब के नज़दीक होता है। यदि खेत तालाब से दूर होता है तो ऐसी अवस्था में मिंचाई का क्षेत्रफल घटता जाता है। दुगले में मिंचाई करने में चार-पाँच रुपया प्रति एकड़ खर्च पड़ता है। इसलिये जिन गाँवों के तालाबों या बाँधों में पानी पाया जाता है, वहाँ के किसान दुगले या बेड़ी को अधिक पसंद करते हैं।

बलदेवबाल्टी

तालाबों या भीलों में अब उन यन्त्रों द्वारा भी पानी उठाने का काम लिया जाने लगा है जो यन्त्र कि नहर में पानी उठाने का काम करते थे। इसलिये इन यन्त्रों का भी वर्णन यहाँ पर करना आवश्यक है। इन यन्त्रों में से बलदेव बाल्टी लोहे का एक यन्त्र है जिसे कानपूर

के सरकारी कृषि यन्त्रालय में बलदेव मिस्त्री ने बनाया था। जिसे सरकारी कृषि-विभाग के इंजीनियरों ने अपने अनुभवों के बाद इसको सिंचाई के लिये उपयोगी यन्त्र समझ कर किसानों में प्रचलित कर दिया।

इस यन्त्र में लोहे का लम्बा दो परनाला होता है। वह परनाला, नालाबों, बाँधों या नहर में उस जगह लगाया जाता है जहाँ पर कि खेत का धरातल पानी की सतह से लगभग तीन फीट के ऊँचा होता है। उस स्थान पर लकड़ी के खम्भे गाड़कर



चित्र नं० ५

बलदेव वाल्टी

एक गड़ारी पुरवट की गड़ारी की तरह लगाई जाती है। इस गड़ारी पर रस्सा रखकर उसका एक सिरा लोहे के परनाले में बाँध दिया जाता है; दूसरा सिरा भी इसी प्रकार से बाँधकर बैल के जुये में जोड़ दिया जाता है। इस यन्त्र को चलाने तथा पानी उठाने

के लिये एक आदमी तथा दो जाड़ी बैल की आवश्यकता होती है। इस यन्त्र में बैल और आदमी गहट के समान एक ही स्थान पर गोलाई में जिस प्रकार से नेली का बैल-नेल के कोल्ह में घूमता है घूमते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि रस्से से जुड़े हुये परनाले पानी के ऊपर रहते हैं, बैल और आदमी कुछ दूर पर। जब बैल और आदमी घूमते हैं तो लोहे का परनाला पानी में पहुँच जाता है पानी से भर कर पहिला परनाला जब ऊपर उठता है तो दूसरा परनाला पानी में पहुँच जाता है। इस रीति से चारी-चारी से दोनों परनाले पानी उठाते हैं।

लगभग ढाई हजार गैलन पानी एक घण्टे में इस यन्त्र द्वारा उठाया जाता है। ४-१० घण्टा दिन भर इस यन्त्र को चलाकर लगभग $\frac{1}{2}$ एकड़ की सिंचाई की जाती है। इस रीति से लगभग चार रुपया प्रति एकड़ सिंचाई में खर्च पड़ता है। इस यन्त्र का मूल्य आजकल लोहे का भाव बढ़ जाने के कारण अधिक हो गया है। पहिले यह कृषि-विभाग द्वारा खरौदने में साठ-पैंसठ रुपया तक में मिलता था।

इजिप्शियन-स्कूवाटर-लिफ्ट

जितनी गहराई से दुगला पानी उठाता है, उससे कम गहराई से अर्थात् दो-तीन फीट की गहराई से यह यन्त्र भी पानी उठाकर खेतों में पहुँचाता है। मिश्र देश में इस यन्त्र द्वारा लगभग दो फीट की गहराई से पानी उठाने का काम लिया जाता था। इस

देश में भी कृषि-विभाग द्वारा इसे प्रचलित किया गया है। यह यन्त्र लकड़ी का लम्बा बनाया जाता है। बीच में इसमें पेंचदार लकड़ी के टुकड़े लगाये जाते हैं। देखने में इसका आकार ढोल के सदृश होता है।

इस यन्त्र का एक सिरा तालाब के पानी में लकड़ी या लांहे का एक खूँटा गाड़ कर लगा देते हैं। जिस सिरे को पानी में



चित्र नं० ६

मिश्र का स्कू

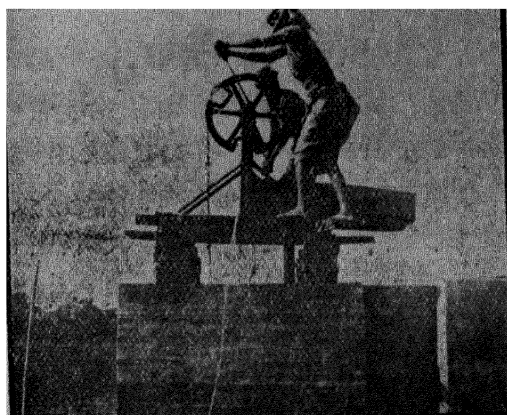
लगाते हैं, उसमें लोहे का एक छड़ लगा रहता है; जिसमें एक छेद भी होता है। पानी में इसे खूब मजबूत गाड़ना चाहिये, जिससे जब

यह यन्त्र चलाया जावे तो उखड़े नहीं, यदि ढीला गाड़ा जायगा तो उखड़ जायगा; इतना ही नहीं ढीला होने पर आवश्यकता-नुसार पानी भी नहीं उठा सकेगा। इसको चलाने के लिये दुगले की तरह दो आदमियों की ज़रूरत होती है, किन्तु यदि नव जवान हों तो एक आदमी पर्याप्त होगा। इसके दूसरे भाग को जो खेत के धरातल पर होता है हाथ से घुमाने पर पानी आप से आप ऊपर चढ़ आता है; एक घंटे में लगभग दो हज़ार से लेकर ढाढ़ हज़ार गैलन पानी प्रति घंटा इससे उठाया जाता है। ६-१० घंटे चला कर ३ एकड़ की सिंचाई प्रति दिन की जा सकती है। एक एकड़ सींचने में लगभग ३) व्यय पड़ता है। इस यन्त्र की कीमत ३५) से लेकर ४०) तक है।

चेनपम्प

नालाब, बांध तथा नहर से पानी उठाने का यह एक लोहे का यन्त्र है। जो जलाशय खेत के धरातल से ४-५ फीट गहरा है। उनमें यह यन्त्र लगाया जाता है। लोहे का एक नल जो लगभग पाँच-सान फीट लम्बा होता है, इस यन्त्र के लकड़ी के चौकटों के बीच में डालकर पानी में छोड़ दिया जाता है। इस नल के बीच में लोहे की एक जंजीर जिसमें लोहे के छोटे-छोटे तवे लगे रहते हैं, डाली जाती है। लकड़ी के चौकटों पर ऊपर लोहे की एक पहिया गोल-गोल लगी रहती है। इस पर वह जंजीर चढ़ा दी जाती है। उसे दो आदमी एक साथ बार-बारी से चलाने हैं। इस

प्रकार से दिन भर चलाने के लिये चार आदमियों की जरूरत होती है। छोटे आकार-प्रकार का चैन पम्प जो पाँच फीट की गहराई से पानी उठाता है, एक घंटे में लगभग चार हजार गैलन पानी उठाता है। दिन भर में ६-१० घंटे काम करके आधे एकड़



चित्र नं० ७

चैन पम्प

की सिंचाई कर सकता है। इस यन्त्र का दाम बलदेव वाल्टी के समान साठ-पैंसठ रुपया है। एक एकड़ सींचने में मजदूरों की मजदूरी १) से लेकर १।१) तक देनी पड़ती है।

इस प्रकार के यन्त्र पाँच फीट से लेकर १५ फीट तक के बनाये जाते हैं। जो १५ फीट की गहराई तक पानी उठा सकते हैं। अधिक गहराई से पानी उठाने में सिंचाई का क्षेत्रफल कम हो

जाता है। इसके चलाने में लोहे का एक गियर लगता है। दो गियर के चैन पम्प भी बनाये जाते हैं, जिसे डवल गियर चैन पम्प कहते हैं। डवल गियर चैन पम्प बल्देव वाल्टी की भाँति बैलों से भी चलाया जाता है, अधिकतर इनका उपयोग नहरी इलाकों में होता है।

पानी का पहिया

भील, तालाब, इत्यादि जलाशयों से पानी उठाने का यह लकड़ी का यन्त्र है। इसे कृषि-विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर डाक्टर सिंह ने अभी हाल में बनाकर प्रचलित किया है। इसका अनुभव उक्त डिप्टी डाइरेक्टर साहब ने अनेकों स्थानों पर किया है। उनके अनुभव से यह यन्त्र सफल सिद्ध हो चुका है। इसलिये इसका वर्गान आवश्यक है।

इस यन्त्र को पानी उठाने के लिये नहर भील, तालाब, सभी स्थानों में लगा सकते हैं। इस यन्त्र द्वारा अधिक से अधिक तीन फीट की गहराई से पानी उठाया जाता है। इस यन्त्र को चलाने के लिये आठ आदमी लगाने पड़ते हैं। प्रति घंटा लगभग चौदह हजार गैलन पानी इस यन्त्र से उठाकर दो एकड़ की मिंचाई प्रतिदिन इस यन्त्र द्वारा की जा सकती है। इस यन्त्र का दाम ४०) है, लकड़ी का होने के कारण देहातों में इसे देहाती कारीगरों द्वारा बनाकर इम्तेमाल किया जा सकता है; लोगों को इसका उपयोग अन्यान्य यंत्रों के समान करके इसका अनुभव प्राप्त करके लाभ उठाना चाहिये।

नहर

जिस प्रकार से कुएँ, तालाब, भील फसलों की मिंचाई के साधन है। उसी प्रकार से नहर भी फसलों का मिंचाई के लिये एक प्रधान साधन है, देश की उन्नति के लिये हरक देश की सरकार फसलों की मिंचाई के लिये नहरों को खुदवानी है। हमारा देश तथा प्रान्त में भी गंगा, जमुना तथा शारदा नदियों से नहरें निकाली गई हैं; जिससे इस देश का बहुत बड़ा भूभाग सींचा जाता है।

नहर का पानी जिन खेतों में तोड़ की रीति से पहुँच जाता है। उसमें तो कम खर्च पड़ता है। किन्तु जिसमें उठाकर यन्त्रों द्वारा पानी पहुँचाया जाता है: उसमें खर्च अधिक पड़ता है। डाल द्वारा नहरों से मिंचाई करने के लिये अधिकतर वहीं यन्त्र नहर के डलाकों से भी काम में लाये जाते हैं: जिनका वर्णन इस पुस्तक में हो चुका है।

जिन स्थानों में नहरों द्वारा तोड़ से मिंचाई होती है। वहाँ के काश्तकार बड़े-बड़े बरहें बना कर एक दस खेत को पानी से भर देते हैं। इस रीति से अधिक पानी के कारण खेत की मिट्टी में सीलन बराबर बनी रहती है। जिससे फसलों की पैदावार अच्छी नहीं होती। इसलिये नहरों डलाकों के काश्तकारों को नहरों का पानी आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाना फसलों की उपज की दृष्टि से लाभप्रद है।

मिर्जापुर जिले में नदियों से नहर निकालने के बजाय पहाड़ों

के ऊपर बड़े-बड़े बाँध बाँधकर नहर के अधिकारियों ने मिंचाई के लिये जल एकत्रित किया है। इन पहाड़ी बाँधों का जल पहाड़ों की प्राकृतिक नदियों द्वारा नीचे लाकर जिले में फैलाया गया है। जिससे जिले की फसलों की मिंचाई की जाती है। जिन-जिन स्थानों में नहर द्वारा मिंचाई की जाती है। उन-उन स्थानों में नहर-विभाग के कर्मचारी मिंचाई के क्षेत्रफल का हिसाब-किताब गाँव के पटवारियों के समान रखते हैं। मिंचाई का मूल्य किसानों से हरक फसलों के अनुसार लिया जाता है। मिंचाई से जो आय होती है यह नहर-विभाग में खर्च होती है। नहरों द्वारा मिंचाई की अनेकों सुविधाएँ नहर-विभाग के अधिकारियों द्वारा कृषकों को दी जाती है, जिन लोगों के गाँव नहर के इलाकों में पड़ते हैं, उन्हें सभी मार्गों से लाभ उठाना चाहिये।

निकार्ड-गुड़ाई

फसलों की बुवाई तथा सिंचाई के बाद जब फसलों के पौदों यदि उगकर लगभग एक बालिशत बड़े हो जाते हैं, उस समय खेतों का निरीक्षण किया जाय तो खेतों में मुख्य फसल के पौदों के अतिरिक्त दूसरी जाति के फसलों के बहुत से पौदे भी खेत में यत्र-तत्र उगे हुये दिखलाई देंगे। अतिरिक्त इन पौदों के खरपतवारों के भी पौदे बोई हुई फसल के खेतों में अधिकता से उग आते हैं। हर एक जाति के पौदे जो मुख्य फसल में उग आते हैं, इन्हें निरा-गोड़ कर खेत से निकाल बाहर करने को ही फसलों की निकार्ड-गुड़ाई करना कहते हैं।

वर्षाकाल के आरम्भ होने ही या उसके कुछ पहिले बहुत सी फसलें पलेवा करके बोई जाती हैं। इन फसलों में से गन्ना, मक्का, कपास, मूंगफली, अरुबी, बगुडा इत्यादि फसलें ऐसी हैं। जिनकी बुवाई माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ में ही पलेवा करके कर दी जाती है। इन फसलों की सिंचाई भी उक्त महीनों में जहाँ पर जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनके द्वारा होती रहती है।

सिंचाई के बाद इन फसलों में खर-पतवारों के बहुत से पौदे उग आते हैं। इन्हें यदि निकार्ड, गुड़ाई करके खेत से निकाला न जाय तो यह मुख्य फसल के पौदों को चारों ओर से जकड़ लेते हैं; जिससे मुख्य फसल के पौदों की खराक इन्हीं पौदों द्वारा धीरे-धीरे

खर्च हो जाती हैं। इस कारण मुख्य फसल के पौधे न तो पर्याप्त रूप से बढ़ने ही पाते हैं न बढ़ कर अच्छी पैदावार ही दे सकते हैं।

इसी प्रकार से वर्षाकाल के आरम्भ होने पर खरीफ की फसलें जल बाँडे जाती हैं; जैसे ज्वार, बाजरा, अरहर, तिल, उरद, मूंग, अगुडी, मिण्डी, शकरकंद इत्यादि तो इनके खेतों में भी खरपतवारों के पौधे बहुतायत से उग आते हैं। मुख्य फसलों के पौधे जब इन खरपतवारों के पौधों से चारों ओर से घिर जाते हैं तो उनकी वाढ़ मारी जाती है उपज भी कम होती है।

रबी की फसलों की बुवाई के बाद गेहूँ, जव, चना, मटर के खेतों में भी यदि निर्गन्धण किया जाय तो मिर्चाई के बाद वधुआ, गजरा, हरमिंगार, गोभी, माँडा इत्यादि घर पतवारों के पौधे अधिकता से उग आते हैं। इन पौधों के उग आने से खेत की मुख्य फसल की खुराक नष्ट होती है; तथा उपज भी मारी जाती है।

रबी, खरीफ तथा जायद की फसलों से इन खरपवारों के पौधों का निकाल बाहर करने के लिये फसलों की निकाई-गुड़ाई करना बहुत ही आवश्यक है। निकाई-गुड़ाई करने से खेतों से खरपतवार के पौधे निकल जाने से दो प्रकार के लाभ होते हैं। पहिला लाभ तो यह होता है कि फालतू पौधे जो मुख्य फसल के पौधों की खुराक को बर्बाद करते थे, उनके निकल जाने से मुख्य फसल के पौधों को खुराक अधिकता से मिलती है। जिससे उत्तम पैदावार की आशा की जाती है।

दूसरे निकाई के साथ-साथ खेतों की गुड़ाई अपने आप होती जाती है, जो चतुर किसान हैं, वह निकाई के यन्त्रों से उन जगहों को जहाँ घासें उगी रहती हैं, उसे तो भुरभुरा बनाते ही हैं; साथ ही आसपास की जमीन को तथा मुख्य फसलों के जड़ों के पास भी गुड़ाई करते जाते हैं, जिससे खेत की भूमि भुरभुरी हो जाती है। निकाई करके फालतू पौदों को निकाल देने के बाद खेतों की भली भाँति गुड़ाई करके खेत को भुरभुरा बना देने से खेत के धरातल तथा गर्भतल के भीतर वायु और सूर्य के ताप का प्रवेश भली भाँति होने लगता है; जिससे पौदों के लिये भूमि के भीतर खराक की मात्रा प्रचुरता से तैयार होती है।

जब तक भूमि के भीतर सूर्य की गर्मी तथा वायु पर्याप्त रूप में प्रवेश नहीं करती तब तक भूमि के भीतर पौदों की खराक इस रूप में अधिकता से तैयार नहीं होती, जिसे कि मुख्य फसलों के पौदे खाकर उत्तम श्रेणी की पैदावार दे सकें।

उक्त बातों के अतिरिक्त खेत की भूमि के भीतर पौदों की खराक को तैयार करने के लिये भूमि में अनेकों जीवाणु भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तनों द्वारा पौदों को भोज्य पदार्थ पहुँचाने के लिये कार्य करते रहते हैं। इन जीवाणुओं को उचित रीति से कार्य करने के लिए भूमि के भीतर पर्याप्त रूप से वायु और सूर्य के प्रकाश का पहुँचना आवश्यक है।

ऊपर निकाई-गुड़ाई के लाभ का दिग्दर्शन पाठकों को कराया गया है, जिससे यह बात भली प्रकार से समझ में आ गई होगी कि

जिस प्रकार से उत्तम श्रृंगी की पैदावार लेने के लिये खेतों की जुताई, खाद, बुवाई, सिंचाई आवश्यक कृषि-कर्म हैं। उसी प्रकार से खेतों की खड़ी फसलों में निकाई-गुड़ाई करना तथा फसलों पर मिट्टी चढ़ाना भी एक आवश्यक कृषि-कर्म है, जो नियमानुसार नियत समय पर होना अर्थात् आवश्यक है।

जिस प्रकार से अन्यान्य कृषि-कर्मों के लिये कृषि-यन्त्रों की आवश्यकता होती है; उसी प्रकार से निकाई-गुड़ाई के लिये भी बहुत से कृषि-यन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं, उन यन्त्रों का वर्णन पाठकों की जानकारी के लिये किया जाता है।

निकाई-गुड़ाई के लिये खुरपी भारतवर्ष का एक बहुत ही प्राचीन कृषि-यन्त्र है। जब यह छोटे आकार-प्रकार की होती है तो इसे खुरपी कहते हैं। जब यह बड़े आकार-प्रकार का होता है तो इसे खुरपा कहते हैं। खुरपा और खुरपी दोनों का प्रयोग आवश्यकता और समय के अनुसार कृषि-कर्म में निकाई-गुड़ाई के लिये किया जाता है।

सखरीफ तथा रबी की जो फसलें छिटकवाँ रीति से तथा हल के पीछे कूढ़ों में बोई जाती हैं। यह फसलें जब बाँए जाने पर घनी उगती हैं। उस समय इन फसलों के खेतों में खर-पतवार के पौधे बहुतायत से उग आते हैं, उन खरपतवार के पौधों को निकालने के लिये तथा पौधों के बीच में छुटी हुई मिट्टी की गुड़ाई करने के लिये खुरपी तथा खुरपा से बढ़कर कोई भी कृषि यन्त्र नहीं है, जो फसलों की निकाई तथा गुड़ाई कर सके।

धान हमारे देश की एक मुख्य फसल है। धान की खेती का क्षेत्रफल इस देश में अन्यान्य फसलों की अपेक्षा कम नहीं है। धान की कुछ किस्में जिसे कुआरी या जल्द पकने वाली किस्में कहते हैं, खेतों में छिटकवां रीति से बोई जाती है। धान की जिन किस्मों की बेहन लगाई जाती है, उन किस्मों को भी 'बेहन उर' की क्यारियों में घने तौर पर बोने हैं। जब धान के पौदे उग आते हैं तो उनमें बहुत से खर-पतवार के पौदे आप से आप उगकर धान की बेहन को दबा देते हैं। ऐसे समय में धान की बेहन की निकाई-गुड़ाई करने के लिये छोटे आकर-प्रकार की खुरपियाँ ही काम देती हैं, नवीन प्रकार के वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र ऐसी बेहन की क्यारियों में काम नहीं कर सकते।

इन छोटी-छोटी खुरपियों द्वारा धान की फसल तथा उसके बेहन की क्यारियाँ चतुर किमानों द्वारा निकाई जाती हैं। इन खुरपियों के प्रयोग से धान की फसल का कोई पौदा नष्ट नहीं होता; जिससे फसल की कोई हानि नहीं होती। इसलिये खुरपी का प्रयोग निकाई-गुड़ाई के लिये आवश्यक है।

शाक-भाजी की जो फसलें उत्पन्न की जाती हैं। उनमें से बहुतों का बीज बेहन तैयार करने के लिये पहिले क्यारियों में छोड़ा जाता है; बेहन की क्यारियाँ ग्वाद-पाँस से पटी रहती हैं। इन क्यारियों में उर्वरा-शक्ति पूर्ण मात्रा में रहती है। शाक-भाजी के बीजों की जब बेहन डाली जाती है तो खर-पतवार के अधिकांश पौदे उगकर शाक-भाजी की बेहन के पौदों को दबा देते हैं। उस

समय में बेहन की इन क्रियायों की निकाई-गुड़ाई खुरपी द्वारा ही की जा सकती है। दूसरे कृषि-यन्त्र ऐसे समय में निकाई-गुड़ाई के लिये उपयोगी नहीं हो सकते।

देहातों में खरीफ की बहुत-सी फसलें जैसे ज्वार-बाजरा तिल, अरहर, सावा, काकून, उरद, मूंग की फसलें अधिकतर किमान लोंग छिटकवाँ रीति से ही बोने हैं। यह फसलें जब उगकर बढ़ने लगती हैं तो खर-पतवारों के पौदे इन फसलों को दबा देते हैं। उस समय में इन छिटकवाँ रीति से बोई हुई फसलों की निकाई-गुड़ाई खुरपी तथा खुरपे द्वारा ही की जा सकती है। इससे यह बात भली प्रकार से समझ में आ जाती है कि जो फसलें छिटकवाँ रीति से बोई जाती हैं, तथा बहुत ही घनी उगती हैं। उसमें खुरपी द्वारा ही निकाई-गुड़ाई हो सकती है।

रबी की फसलों में जव, गेहूँ, मटर इत्यादि जब सिंचाई के बाद बढ़ने लगते हैं तो इन फसलों में गजरा, बथुआ, हरसिंगार के पौदों को हाथ से उखाड़ कर निकाई का काम करने हैं। कहीं-कहीं पर कुछ काश्तकार इस काम में भी खुरपी का प्रयोग करते हुये देखे गये हैं। किन्तु अधिकतर रबी की फसलों में खरपतवार के पौदे हाथ से ही उखाड़े जाने हैं।

खरीफ की कुछ फसलें जब बहुत घनी उग आती हैं तो इन घनी उगी हुई फसलों को जब खरपतवार के पौदे भली प्रकार से दबा लेते हैं; तो बहुत से किमान देशी-हल से हल्के हाथ से

फुलफुले तौर पर खेत में खड़ी हुई फसल को जांत देने हैं। खड़ी फसल में इस जुताई को खेतों को 'विदहना' कहा जाता है।

देशी-हल से जिन खेतों की खड़ी फसल विदह दी जाती है उन खेतों की बहुत सी घास-फूस तथा अमल फसल के पौदे जो बने उगे रहते हैं, आप से आप उखड़-पुखड़ जाते हैं। खेत की मिट्टी भी देशी हल द्वारा खेतों को विदहने से गुड़ जाती है। इस रीति से खेतों की निकार्ड-गुड़ाई अपन आप हो जाती है। खुरपा के अनिरिक्त देशी-हल द्वारा भी बहुत सी फसलों में निकार्ड-गुड़ाई की जाती है।

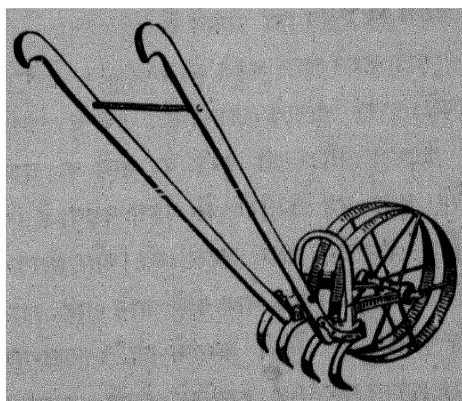
उक्त यन्त्रों को छोड़कर जो हमारा देश में प्राचीन काल से ही निकार्ड-गुड़ाई के काम में आते हैं। वर्तमान काल में वैज्ञानिक रीतियों से बहुत से नवीन यन्त्र भी बनाये गये हैं जो फसलों की निकार्ड-गुड़ाई करते हैं। यह नवीन यन्त्र छिटकवां रीति से बोई हुई फसलों में निकार्ड-गुड़ाई नहीं कर सकते। इन यन्त्रों का प्रयोग करने वालों के लिये यह आवश्यक है कि जो फसलें क्रतारों में पर्याप्त दूरी पर बोई जा सकें; साथ ही इस रीति से बाने पर उत्तमी श्रंणी की उपज प्राप्त हो सके; उन फसलों को क्रतारों में बाँटें। क्रतारों में बोई हुई फसलों की निकार्ड-गुड़ाई करने के लिये नवीन वैज्ञानिक-कृषि-यन्त्र अधिक लाभप्रद सिद्ध हुये हैं। क्रतारों में बोई हुई फसलों की निकार्ड-गुड़ाई में खुरपा द्वारा लाभ नहीं प्राप्त हो सकता। क्रतारों में बोई हुई फसलों की निकार्ड-गुड़ाई के लिये देशी कृषि-यन्त्रों में कुदाल का प्रयोग किया जाता है।

इस कुदाल के यन्त्र को कहीं-कहीं पर कुदार या कर्सी भी कहते हैं। खुरपी के समान यह भी लोहे का एक देशी-कृषि यंत्र है जो देशी लुहारों द्वारा बनाया जाता है। खुरपी की कीमत एक आना से लेकर चार आना तक होती है। कुदाल छः आना से लेकर आठ आना तक में मिलती है।

खुरपी और कुदाल की निकाई-गुड़ाई में केवल इतना ही अंतर है कि खुरपी द्वारा मजदूर खेतों में बैठे-बैठे निकाई-गुड़ाई करते हैं। किन्तु कुदाल द्वारा कतारों में बाँई हुई फसल की निकाई-गुड़ाई झुककर या निहुरकर की जाती है। कुदाल से कतारों के बीच की भूमि गोंड़कर उसमें से खर-पतवार के पौधे बीन लिये जाते हैं। मिट्टी के बड़े-बड़े डलों को हाथ से या कुदाल के नीचे वाले भाग से तोड़कर चूर-चूर कर देते हैं। इस रीति से खुरपी तथा कुदाल द्वारा छिटकवाँ तथा कतारों में बाँई हुई फसलों की निकाई-गुड़ाई की जाती है।

उन्नति प्राप्त जो कृषि-यन्त्र निकाई-गुड़ाई के काम में आते हैं। उसे “हों”, हैगों, तथा कल्टीवेटर के नाम से पुकारा जाता है। बहुत से उपर्युक्त नाम के कृषि-यन्त्र मनुष्यों द्वारा हाथ से उत्तमता से चलाये जाते हैं। जिनसे कतारों में बाँई हुई फसलों की निकाई-गुड़ाई भी होती है। उन यन्त्रों में डाक्टर सिंह साहब का बनाया हुआ “हों” बहुत ही सस्ता और लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसका मूल्य लगभग १) है; इसे देशी लुहार देहातों में बना सकते हैं। इसके लोहे के भाग को बनाने के लिये देशी लोहा इस्तेमाल किया जा सकता है। लकड़ी का वह भाग

जो हाथ से पकड़ कर खेतों में चलाया जाता है, बाँस का होता है। यह भी देहातों में आसानी से मिल जाता है। इस यन्त्र में खूबी यह है कि कृतारों में बोई हुई फसल को जैसे मक्का, मूँगफली, अरहर, कपास, गन्ना तथा शाक-भाजी की फसलों में एक आदमी इसे खड़े-खड़े आसानी से चला सकता है। उसे झुकने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। कुदाल द्वारा मनुष्य को झुककर फसलों



चित्र नं० =

हैण्ड हां

की गुड़ाई करना पड़ता है; किंतु इस “हैण्ड हां” में यह बात नहीं है। इसलिये फसलों की गुड़ाई के लिये इस “हैण्ड हां” का प्रयोग वर्तमान काल में किसानों के लिये लाभप्रद है।

हाथ से निकाई-गुड़ाई करने के लिये “जूनियर सैनेट” भी एक कृषि-यन्त्र है, किंतु इसका दाम २४) के लगभग पड़ता है, जिसे

साधारण किमान खरीद नहीं सकता; जो लोग इसे खरीद सकते हैं, वह इस यंत्र द्वारा कृतारों में बाँई फसलों की निकाई-गुड़ाई करने के अतिरिक्त इस यंत्र को बारा तथा फुलवारियों के काम में भी इस्तेमाल कर सकते हैं। हाथ से खड़े होकर निकाई-गुड़ाई करने के लिये बाजारों में आजकल बहुत से क्रिम्म के "हैण्ड हॉ" विकते हैं, जो स्थानीय कृषि-विभाग के कर्मचारियों की राय से खरीदे और इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

निकाई-गुड़ाई करने वाले बहुत से यन्त्र अब ऐसे भी बन गये हैं जो पशुओं द्वारा चलाये जाते हैं। किन्तु ऐसी अवस्था में फसलों को डेढ़-दो फीट की दूरी पर बोन के बजाय लगभग तीन फीट की दूरी पर कृतारों में बाँना पड़ता है। ऐसी फसलों में गन्ना, भाँटा, टमाटर तथा बहुत सी और शाक-भाजी तथा फल-फूल की फसलें हैं, जो एक बार बाँये जाने पर साल भर तक खेतों में खड़ी रहती हैं। ऐसी फसलों की निकाई-गुड़ाई वर्ष के भीतर कई बार करना पड़ता है, इसलिये ऐसी फसलों की निकाई-गुड़ाई के करने के लिये बैलों द्वारा चलने वाले कृषियन्त्रों को ही इस्तेमाल करना लाभदायक है।

उक्त प्रकार के कृषि-यन्त्रों में यह खूबी होती है कि पर्याप्त फासिले पर बाँई हुई फसलों की निकाई-गुड़ाई के साथ कसलों की जड़ों पर मिट्टी भी साथ-साथ चढ़ती जाती है। ऐसे यन्त्रों की बनावट मिट्टी पलटने वाले हलों के समान होती है, किन्तु इन यन्त्रों में दोनों ओर मिट्टी पलटने वाला भाग लगा रहता है; जिससे जब

यह कृतारों के बीच में चलाया जाता है तो कृतारों में बोंई हुई दोनों कृतारों के बीच तो यह यन्त्र चलता है और फसलों की कृतारों के बाहर बेल चलते हैं। ऐसी अवस्था में यह यन्त्र कृतारों के बीच वाले भाग की मिट्टी तथा खरपतवार को खोदकर फसलों की जड़ों पर चढ़ा देता है। इस काम के लिये देशी-यन्त्रों में फावड़ा एक ऐसा यन्त्र है जो काम में लाया जाता है।

फावड़ा जिसे कहीं-कहीं पर फरहा भी कहते हैं, लोहे का एक प्राचीन यन्त्र है—जो भूमि की खुदाई के काम में विशेषरूप से आता है; इस फावड़े को फसलों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने के लिये भज्जदूरों द्वारा प्रयोग किया जाता है। गन्ने की फसल जो कृतारों में नाली बनाकर बोंई जाती है; उन नालियों को गिराने के लिये तथा गन्ने की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाने के लिये फावड़े का उपयोग किया जाता है। फावड़ा सवा-डेह रूपसे खरीदा जा सकता है, किंतु बैलों द्वारा निकार्ड-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाने वाले कृषि यंत्र ४०) के लगभग खर्च करने पर खरीदे जा सकते हैं। थोड़े क्षेत्रफल में खेती करने वालों के लिये फावड़ा ही उपयोगी है; किंतु अधिक क्षेत्रफल में तथा जिन गांवों में फसलों की चकवंदी सहयोग-समितियों द्वारा हो गई हो; उन गांवों में नवीन वैज्ञानिक कृषियंत्रों को भी इस काम के लिए खरीदा जा सकता है।

फसलों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना

बहुत सी ऐसी फसलें हैं, जिनकी निकार्ड-गुड़ाई करने के बाद

उनकी जड़ों पर मिट्टी नहीं चढ़ाना पड़ता है। किंतु कुछ फसलें ऐसी हैं, जिनकी निकाई-गुड़ाई के बाद मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है। इन फसलों में से गन्ना, मक्का, आलू, शकरकंद, बण्डा, घुइयाँ भाँटा इत्यादि फसलों की जड़ों पर बिना मिट्टी चढ़ाये काम नहीं चल सकता। न पैदावार ही अच्छी होती है। इसलिये कृतांगों में पर्याप्त दूरी पर बोन के बाद फावड़े से या नवीन वैज्ञानिक कृषियंत्रों से इन फसलों की जड़ों पर मिट्टी अवश्य चढ़ाना चाहिये।

असावधानी से या आलसवश यदि इन फसलों की जड़ों पर मिट्टी न चढ़ाई जायगी तो इनमें से जो फसलें लम्बाई में अधिक बढ़ती हैं, वह बढ़ कर गिर पड़ेंगी; जैसे मक्का और गन्ना। इन फसलों के गिर जाने से पैदावार मारी जायगी। शकरकंद तथा आलू में यदि मिट्टी न चढ़ाई जायगी तो भूमि में आलू तथा शकरकंद की जड़ें जो मनुष्य-समाज के उपयोग में आती हैं, बहुतायत से न तो पड़ेंगी ही; न मुटाई में ही मोटी होंगी। इसलिये ऐसी फसलों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है।

खड़ी फसलों में बीजों का चुनाव

जब फसलों की मिचाई-निकाई-गुड़ाई हो चुकती है तो इसके बाद फसलें बढ़ती हैं। बढ़ने पर उनमें फूल-फल आने लगता है। ऐसे समय में फसलों के पौधों पर अनेकों प्रकार की आपत्तियाँ आती हैं। इन आपत्तियों में फसलों के रोग, कुसमय की वर्षा, पाला, इत्यादि दैविक प्रकोप हैं। इनके अतिरिक्त गाँवों की कुप्रथाएँ

तथा फसलों की चोरी; पशुओं द्वारा फसलों की हानि; जिन-जिन रीतियों से होती हैं, उनका निवारण करके खड़ी फसलों के ही समय बीजों के लिये फसलों में से कुछ पौदों के बीज या फसल का कुछ हिस्सा छाँट कर बीज के लिये छाँड़ना बहुत ही आवश्यक है।

शुद्ध तथा निरोग बीज बोये जाने के बाद भी खड़ी फसलों में जब फसलें फूट आती हैं और उनकी बालियाँ निकल आती हैं तो निरीक्षण करने से खेतों में बहुत से अन्यान्य जाति के पौदे दृष्टिगोचर होते हैं। इन पौदों को खड़ी फसलों में से चुनकर निकाल देना चाहिये, जिससे फसलों के बीज शुद्ध तथा निरोग मिल सकें। क्योंकि अगली फसल को बोने के लिये बीजों की आवश्यकता पड़ती है; यदि तैयार खड़ी हुई फसलों में बीजों का चुनाव न किया जायगा तो बीज की समस्या हल न होसकेगी। काश्तकारों को अपने लिये—तथा जो लोग बीज का व्यवसाय करने हैं, अथवा फसलों का बीज; बीज की दृष्टि से खरीदना चाहते हैं; उनके लिये शुद्ध तथा निरोग बीज का चुनाव खड़ी फसलों में करना चाहिये।

मान लीजिये कि किसी काश्तकार को मक्का, ज्वार या बाजरे का बीज एकत्रित करना है तो उसे प्रति दिन के निरीक्षण से उक्त फसलों के खेतों में कुछ ऐसे पौदों का चुनाव करना चाहिये जिन पौदों में कि पहिले फूल तथा फल आवें। उन पर किसी किस्म का रंगीन कपड़ा बाँध कर पौदों की पहिचान करने के लिये ऐसा निशान लगाकर छाँड़ देना चाहिये।

उक्त रीति से कुछ पौदों का चुनाव करने के बाद उनका

निरीक्षण करने रहना चाहिये। जब इन पौदों की फसल तैयार हो जाय तो इन्हें काटकर इनके भुट्टों तथा बालियों को जो देखने में दृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ हो अलग रखकर इनका बीज या इन बालियों को ही बीज की दृष्टि से मुराजत रखना चाहिये, जिससे अगली फसल को बोने के लिये किसानों को बीज मिल सके। ऐसे बीजों के व्यापार में भी अधिक लाभ होता है।

खर्गफ की फसलों के अतिरिक्त ग्वी की फसलों में जब, गेहूँ चने, मटर की फसलों का कुछ भाग बीज के लिये नियत कर लेना चाहिये। जब फूलने फूटकर पकने लगें तो बीज के संग्रहण की दृष्टि से गेहूँ तथा जव के खेतों का निरीक्षण करना चाहिये। देहातो में यदि किसी किसान के गेहूँ के खेत का निरीक्षण बीज की दृष्टि से किया जाय तो गेहूँ के खेत में सीकुरदार तथा बरौर सीकुरदार गेहूँ के पौदे दिखलाई पड़ते हैं। इसी प्रकार से जो किसान कृषि-विभाग द्वारा शुद्ध तथा निरोग बीज लाकर बोते हैं, उनके खेतों में भी अन्यान्य गेहूँ के पौदे उगे हुये पाये जाते हैं। जैसे गेहूँ प्रसा नं० ५२ में प्रसा गेहूँ नं० ४ तथा १० के भी पौदे कहीं-कहीं पर दिखलाई देते हैं। इतना ही नहीं देशी गेहूँ की भी बालियाँ दिखलाई पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में इन खेतों से अजातीय पौदों को तथा उनकी बालियों को चुनकर निकाल लेना चाहिये। जिससे बीज शुद्ध रहे।

प्रत्येक वर्ष यदि इस रीति से खड़ी फसलों का चुनाव बीज की दृष्टि से किया जाय तो किसानों का बीज अपने आप शुद्ध रहेगा।

बीजों की शुद्धता का ध्यान खेतों से लेकर खलिहान तक के कार्यों में करना पड़ता है ।

जिस प्रकार से गेहूँ का बीज खड़ी फ़सलों में चुनकर शुद्ध किया जा सकता है । उसी प्रकार से जव, चना, मटर का भी बीज शुद्धता की दृष्टि से चुनना चाहिये । फ़सलों का चुनाव फ़सलों के फूलों का भी देखकर किया जा सकता है । मटर तथा चने की फ़सलों में कुछ फूल तो सफ़ेद होते हैं; कुछ पौदों के फूल लाल होते हैं । फूल आने के समय यदि इन पौदों को छुट्टि लिया जाय । साथ ही इन पौदों पर निशान लगा दिया जाय; बाद में इन पौदों को पकने पर उखाड़ कर अलग रखा जाय ।

इन पौदों द्वारा जो बीज प्राप्त हों उनकी गुवाई अलग की जाय तो कुछ दिनों के बाद शुद्ध बीज आप से आप प्राप्त होने लगेगा । आजकल खड़ी फ़सलों का जव से कि वह फूलने लगती है निरीक्षण करने में पता चलता है कि एक ही खेत में कई किस्म के फूलों के पौदे हैं । फूलों की दृष्टि से तथा फ़सलों के फ़ट आने पर बालियों की दृष्टि से; इतना ही नहीं, इनसे प्राप्त होने वाले बीजों की दृष्टि से भी खड़ी फ़सलों में बीजों का चुनाव करना अतीव आवश्यक है; जो किमान बीजों की शुद्धता तथा चुनाव की ओर ध्यान नहीं देते; उनकी फ़सलों से खाने-पीने के लिये तो अन्न प्राप्त किया जा सकता है; किंतु बीज के लिये उनका अन्न उपयोगी नहीं होता ।

फ़सलों की रखवाली

जब 'मंवार' में फ़सलें पकने लगती हैं और फ़सलों में जैसे ही फल, फल, बीज पड़ने लगता है। इतना ही नहीं जब यह कच्ची अवस्था में ही रहती हैं, तभी से फ़सलों को हानि पहुँचाई जाने लगती है। दैवी प्रकोपों के अतिरिक्त फ़सलों को अन्यान्य रीतियों से भी हानि पहुँचती है। इन हानि पहुँचाने वाले ज़रियों में से कुछ ज़रिये तां गेमे हैं, जिनकी रोक थाम किसान लोग आपस में मिलकर सहयोग द्वारा कर सकते हैं।

देहातों में गाँवों में कुछ किसान ऐसे होते हैं जो रात में चोरी से अधपकी फ़सलों को काटकर अपने जानवरों को खिलाने हैं। ज्वार, बाजरा, मक्क के भुट्टे खरीफ़ की फ़सलों में अधिकतर रात में चुरा कर काटे तथा खिलाये जाते हैं। उरद, मूंग की फ़सलों के पौदों को भी रात में उखाड़ कर चुरा कर खिलाने का रवाज देहातों में अधिकता से प्रचलित है।

रबी की फ़सलों में सरसों तथा कुसुम के पौदे तथा फली हुई अरहर की फलियों को उखाड़ कर तथा तोड़कर पशुओं को खिलाने का रवाज प्रचलित है। चने तथा मटर की पकी फ़सल को उखाड़ने तथा घोंड़े-घोंड़ियों को एवं अन्यान्य पशुओं को खिलाने की कुप्रथा का रवाज अभी तक देहातों में कायम है। आलू तथा शकरकंद की फ़सलों को तो अधिकतर चाँदनी रात में चोरों द्वारा खोदकर हानि पहुँचाई जाती है।

उक्त रीतियों के अनिश्चित फाल्गुन मास में जब फ़सलें पककर तैयार होती हैं, तो बहुत से गाँवों में यह कुप्रथा है कि रात में घांड़े-घोड़ी बैल छोड़ दिये जाते हैं। जिसमें पकी हुई खड़ी फ़सलों का अधिक हानि होती है। ऐसे लोगों की संख्या देहातों में उनीगिनी होती है। यह लोग सभी किसानों की फ़सलों का हानि पहुँचाते हैं। ऐसे लोग देहातों में अपनी बुरी आदतों के कारण लोगों पर आतङ्क जमाये रहते हैं, जिसमें ग्रामों की जनता इनसे दबती है। इस रीति से जो लोग पशुओं द्वारा तथा चोरी करके फ़सलों का हानि पहुँचाते हैं; उनकी रोक थाम गाँव की महयांग-समितियों द्वारा ही की जा सकती है।

जिन लोगों में ऐसी हरकतें पाई जाय उन लोगों को सब लोग मिलकर पहिले तो समझावें; बाद में स्वयंसेवकों द्वारा रात में फ़सलों की रखवाली की जाय; रात में जो लोग ऐसी हरकतें करते हुये स्वयंसेवकों के दल को मिलें; उन्हें कानूनी तरीक़ों से दण्ड दिलाने का प्रबन्ध किया जाय। यह दण्ड गाँव की पंचायतों द्वारा देने में कुछ दिनों में ऐसी कुप्रथाओं का लोप हो सकता है।

खड़ी फ़सलों की बहुत कुछ हानि चिड़ियों तथा वनैले पशुओं द्वारा होती है। चिड़ियाँ प्रातःकाल तथा सायंकाल ज्वार बाजरा, मक्के, मटर, चने इत्यादि की फ़सलों का विशेषरूप से हानि पहुँचाती हैं। इनकी रक्षा के लिये खेतों में मचान गाड़ कर ढेल बांसों का उपयोग किसानों के लिये लाभदायक है।

इन मचानों पर दिन तथा रात में बैठकर फ़सलों की रक्षा

जा सकती है : बन्दूक की आवाज़ से भी चिड़ियाँ तथा वनैलें जानवर भाग जाते हैं। ज़राअर्ती बन्दूकों का लाइसेंस ज़िले के अधिकारियों द्वारा मिल सकता है।

बहुत से वनैलें जानवर जो विलों में रहते हैं, रात में ऐसे जानवर निकलकर फ़सलों को हानि पहुँचाते हैं। इन जानवरों में माही, चूहे इत्यादि ऐसे जानवर हैं, जिनका वध साइनोगैस के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। साइनो गैस प्रयोग करने के लिये कृषि-विभाग के अधिकारियों की सहायता आवश्यक है।

अतिरिक्त इसके यदि अन्योन्य रीतियों से फ़सलों को हानि पहुँचती हो तो स्थानीय कृषि-कर्मचारियों के मलाह-मशविरा में उपयोगी तरकीबें साँचकर फ़सलों की रगवानी तथा रक्षा करना चाहिये।

फसलों की कटाई

जब फसलें पक जाती हैं तो उन्हें काटकर खलिहान में लाना चाहिये, फसलों को काटने के पहिले खलिहान को साफ करना आवश्यक है, जिसमें सभी प्रकार की फसलें अलग-अलग पर्याप्त दूरी पर रखा जा सकें। खलिहान के सम्बन्ध में अगले प्रश्नों में सारी बातें लिखी जायेंगी। इस समय कटाई के सम्बन्ध में सारी आवश्यक बातों का वर्णन किया जायगा।

खेतों से फसलों को काटने के लिये कई प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग आजकल किया जाता है, कुछ यन्त्र तो ऐसे हैं जो प्राचीन काल से ही हमारी खेती के काम में व्यवहृत होते रहे हैं; कुछ यन्त्र ऐसे हैं; जो आजकल के समय में वैज्ञानिक रीतियों से बनाए गये हैं।

यह सारे यन्त्र जो फसलों की कटाई के काम में प्रयोग किये जाते हैं, लोहे के बनाए जाते हैं। इन यन्त्रों में एक सिरे पर हाथ से पकड़ने के लिए लकड़ी का एक भाग लगा रहता है जिसे बेंड कहते हैं। कटाई के काम में देशी-यन्त्रों में हँसिया या दरांती का उपयोग प्रचुरता से होता है।

हँसिया देहातों में लुहारों द्वारा बनाई तथा बेची जाती है हँसिया का मूल्य दो आना से लेकर छः आना तक प्रत्येक हँसिये का खरीदते समय देना पड़ता है। कटाई के समय हरेक मजदूरों के

कृ० वि०—६

पास हँसिये का होना आवश्यक है। हँसिये द्वारा खरीफ की फसलों में मक्का, ज्वार, बाजरा, उरद, मूँग इत्यादि की फसलें तथा रबी में जव, गेहूँ, चना, मटर, सरसों, कुमुम, अलसी इत्यादि की फसलें काटी जाती हैं, जिन फसलों के तने पतले तथा महीन होते हैं। उन फसलों की कटाई तो हँसियों से हो सकती है, किन्तु जिन फसलों के तने कड़े तथा मोटे होते हैं। उनकी कटाई के लिये लोहे के गड़ासों का प्रयोग किया जाता है।

गन्ना, अरहर, सनई, अण्डी, पटसन इत्यादि फसलों की कटाई हँसिए से नहीं हो सकती है; इन फसलों की कटाई के लिये गड़ासों का प्रयोग ही उपयुक्त होता है। गड़ासों द्वारा यह फसलें काटकर खलिहान में जमा की जाती हैं। यह गड़ासे भी लोहे द्वारा देशी लुहारों में बनवाये तथा खरीदे जाते हैं। इनका मूल्य लगभग १) प्रति गड़ासा होता है। इन गड़ासों में लकड़ी का एक भाग होता जिसमें लोहे का गड़ास कस दिया जाता है। लकड़ी के इस भाग को कहीं-कहीं जलई भी कहते हैं। इसमें लकड़ी के बेंट वाले भाग को पकड़ कर फसलों की कटाई करते हैं।

बहुत सी फसलें ऐसी हैं, जिनकी जड़ उपयोग में लाई जाती है इन फसलों की जड़ें भूमि के भीतर बढ़ती हैं। उनकी खुदाई के लिये कुदाल तथा फावड़े का प्रयोग किया जाता है। इन फसलों में आलू, बंदा, शकरकंद, मूली, गाजर इत्यादि की गणना की जाती है।

कुछ फसलें ऐसी भी हैं, जिनकी जड़ें महीन होती हैं। उन्हें भूमि से उखाड़ने के लिये किसी यन्त्र की आवश्यकता नहीं होती।

जैसे मटर। मटर की फसल हाथों से ही खेत से उखाड़ ली जाती है।

जिन देशों में वैज्ञानिक रीतियों से खेती की जा रही है, वहाँ पर आलू, इत्यादि फसलों की खुदाई के लिये बैलों से चलने वाले यन्त्र बनाए गये हैं। इस यन्त्र को “पोटैटोडिगर” अर्थात् आलू खोदने वाला यन्त्र कहते हैं।

रबी की फसलों की कटाई के लिये भी वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र बनाए गये हैं। कटाई की इन मशीनों से गेहूँ, जव इत्यादि रबी की कुछ फसलें काटी जाती हैं। थोड़े क्षेत्रफल में खेती करने वाले लोग इन यन्त्रों का प्रयोग नहीं कर सकते।



चित्र नं० ६
कटाई की मशीन

जो लोग अधिक क्षेत्रफल में खेती करते हैं। वह लोग गेहूँ, जव की फसलें इन मशीनों से काट सकते हैं। यह मशीनें उन गाँवों के लिये भी लाभदायक सिद्ध होंगी, जिन गाँवों में फसलों की चकबन्दी सहयोग-समितियों की स्थापना से हो चुकी हो; वहाँ के किसान

सहयोग-समितियों द्वारा ऐसी मशीनों को खरीद कर फसलों की कटाई के उपयोग में ला सकते हैं।

कटाई की यह मशीन दो जोड़ी मजदूर बेलों द्वारा खेतों में चलाई जाती है, इस मशीन के ऊपर एक आदमी बैठकर इस मशीन को चलाता है। इस मशीन के नीचे भाग में उसी प्रकार से लोहे की छूरियाँ लगी रहती हैं, जिस प्रकार से बाल काटने की मशीन में छूरियाँ लगी रहती हैं। मशीन जब खेत में चलती है तो मशीन की छूरियाँ बराबर उधर-उधर चलती रहती हैं। इन छूरियों से गेहूँ, जव के पौदे जड़ से कट जाते हैं। बाद में मजदूरों द्वारा इन पौदों को इकट्ठा करके बंडल बना लेते हैं। इन बण्डलों को खलिहान में लाकर एकत्रित करते हैं। कटाई की इन मशीनों का मूल्य तीन सौ रुपया के लगभग है। आजकल का मूल्य कृषि-विभाग द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इस घण्टे काम करके यह मशीन ४-५ एकड़ खेत काट सकती है।

मजदूरों द्वारा हँसियों से जो फसलें काटी जाती हैं। उनमें कम से कम छः और अधिक से अधिक आठ मजदूर प्रति एकड़ की कटाई के लिये पर्याप्त होते हैं। अनिश्चित इसके फसलों की कटाई भिन्न-भिन्न फसलों में भिन्न-भिन्न रीतियों से की जाती है। इसलिये मजदूरों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। जिससे व्यय भी इस रीति में घटता-बढ़ता रहता है।

फसलों को काटने वाले मजदूरों को कुछ स्थानों पर तो नकद मजदूरी दी जाती है; कुछ स्थानों पर मजदूरों को कटी

हुई फसलों में से कुछ भाग दिया जाता है। रबी की फसलों को काटने वाले मजदूर कुछ स्थानों में तो पैसे की मजदूरी लेते हैं। कुछ स्थानों में यही मजदूर अन्न की मजदूरी लेते हैं। कुछ स्थानों के मजदूर रबी की फसलों को काटकर ग्वलिहान में एकत्रित करने के बाद शाम को गेहूँ, जव या जों कांड फसल काटते हैं। उसका एक बाँझ मजदूरी के रूप में ले जाते हैं, जिसे देहातों में 'लेहना' कहते हैं। 'लेहना' की प्रथा पर फसलों की कटाई का रवाज बहुत से ग्रामों में अभी भी प्रचलित है। लेहना की प्रथा द्वारा कटाई करने पर मजदूरों को साधारण मजदूरी से अधिक आय हो जाती है। दाने और भूसे का मूल्य मिलाकर लेहना की प्रथा में मजदूरों को दूः आना से लेकर प्रति दिन आठ आना तक आय होती है। चैत्र में इस प्रथा से कटाई करने के लिये देहातों में मजदूर बहुतायत में मिलते हैं।

जिन स्थानों में रबी की फसलें 'लेहना' की प्रथा से काटी जाती हैं। उन्हीं स्थानों में खरीफ़ की फसलें ज्वार, बाजरा को भी देहाती मजदूर 'मोर्हठा' की प्रथा में काटते हैं। मोर्हठा की प्रथा में मजदूर ग्वेत से ज्वार-बाजरे की पकी हुई फसलें काटकर ग्वलिहान में जमा करते हैं। बाद में ज्वार, बाजरा के भुट्टे या चालियों को हँसियों से करप कर एकत्रित करते हैं। जिनकी चालियाँ या भुट्टे करपे जाते हैं; उनका वज़न करके या अन्दाज़ से पन्द्रह भाग तो किसान ले लेता है; सोलहवाँ भाग मजदूर को दिया जाता है। इस रीति से कटाई करने को मोर्हठा की

रीति की कटाई कहते हैं; इस रीति में किसानों और मजदूरों को सहूलियत रहती है।

आजकल सोरहठा की रीति में अनेकों प्रकार की बुराइयाँ आ गई हैं; जिसमें फसलों की अधिक हानि होती है: मजदूर लोग दिन में ज्वार-बाजरे का बहुत सा भाग वैसे भी ले जाते हैं; जिससे उपज की हानि होती है। लेहना तथा सोरहठा की जो रीतियाँ किसानों में प्राचीनकाल से चली आ रही हैं, उनका अध्ययन करके उनमें सुधार करने की अतीव आवश्यकता है।

इन रीतियों में फसलों की कटाई करने में यद्यपि किसान और मजदूर दोनों प्राचीन रिवाज होने के कारण कुछ बोलते नहीं हैं। क्योंकि किसानों के पास नक़्द मजदूरी देने के लिये न तो इतना पैसा रहता है कि वह नक़्द मजदूरी दे सकें। न इतना अन्न ही रहता है कि फसलों की कटाई के समय खर्च कर सकें। इसलिये प्राचीन काल में जो बातें चली आ रही हैं, उन्हीं पर लोग चलते जा रहे हैं।

उक्त प्रथाओं के कारण किसानों और मजदूरों में असंतोष अवश्य बढ़ता जा रहा है, किन्तु कोई सुधार न होने के कारण लोग विवश हैं; विवशता के कारण यह प्रथाएँ अभी तक देहातों में प्रचलित हैं; समय आ गया है कि कृषि-विभाग इन प्रथाओं का अध्ययन करके इनमें उचित सुधार कर दे, जिससे किसानों और मजदूरों को समान रीति से लाभ हो। अन्यथा फसलों की कटाई

में इन प्रथाओं द्वारा व्यय अधिक पड़ता है; जिससे किसानों का आर्थिक-दृष्टि से लाभ नहीं होता।

खलिहान

खलिहान को कहीं-कहीं पर फरवार भी कहते हैं। खलिहान में लक्ष्मी का वास रहता है। देहातों में खलिहान अधिकतर बागों में लगाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि किसानों के खेत देहातों में बिगड़े हुये होते हैं। इन बिगड़े हुये खेतों से फसलों को काटकर किसान लोग बागों में एकत्रित करते हैं। खलिहान में होने वाले सारे कामों को करने के लिये देहात के बर्गों के अधिक सुविधाजनक होते हैं।

खलिहान बागों में इसलिये बनाये जाते हैं कि वहाँ पर मनुष्यों और जानवरों के लिये वृक्षों की छाया रहती है। दूसरे खलिहान में मनुष्यों और जानवरों के पानी पीने के लिये कूप का होना भी अति आवश्यक है। बागों में या उसके पास कूप अवश्य होते हैं। इसलिये बागों में किसानों के लिये खलिहान बनाना सुविधाजनक होता है।

जो लोग अधिक क्षेत्रफल में खेती करते हैं। जिसे आजकल फार्म कहा जाता है। उनके खलिहान अधिकतर ऐसी जगह पर बनाये जाते हैं, जो फार्म के बीच में हों। जहाँ पर फार्म का मालिक या प्रबन्धक रहता हो; जो खलिहान की देखभाल हर समय कर सके। फार्म पर बाग-

बगीचे न बनाकर खलिहान के पास कुछ छायादार वृक्षों को अवश्य लगा देना चाहिये। इन छायादार वृक्षों के नीचे मनुष्य तथा जानवर कुछ देर बैठकर आराम कर सकते हैं। वृक्ष के अलावा खलिहान के पास कूप या किसी प्रकार का जलाशय होना बहुत ही जरूरी है, जिससे खलिहान में काम करने वाले मजदूरों और पशुओं को जल आवश्यकतानुसार प्राप्त होता रहे।

देहातों में आजकल आपस में वैमनस्य के भाव पाए जाते हैं। अधिकतर आपस की शत्रुता के कारण एक दूसरे को हानि पहुँचाने के लिये लोंग खलिहानों में आग लगा देते हैं, जिससे खलिहान की सारी फसल जनकर नष्ट हो जाती है, ऐसी अवस्था में बेचारा किसान भाग्य का कांसकर किसी तरह से सब्र कर लेता है। ऐसी दुर्घटनाओं के समय यदि खलिहान के पास में कूप या कोई जलाशय होता है, तो उसमें आग के बुझाने में सहायता मिलती है। इसलिये खलिहान के पास छायादार वृक्षों तथा जलाशय का होना बहुत ही आवश्यक है।

बारीयों में गाँवों के सभी किसान खलिहान लगाते हैं। अपनी आवश्यकता के अनुसार लोंग बारी की भूमि को खलिहान के काम में इस्तेमाल करते हैं, किन्तु चकबन्दी के फार्मों पर खलिहान का क्षेत्रफल एक एकड़ से कम न होना चाहिये। फार्म के क्षेत्रफल के अनुसार खलिहान का क्षेत्रफल एक एकड़ से अधिक बढ़ाया भी जा सकता है। खलिहान अधिकतर चौकार होना चाहिये। खलिहान की भूमि समतल तथा दोमट होने से अनेकों लाभ हैं। जिनमें से

मुख्य लाभ तो यह है कि भूमि के दोमट होने से मिट्टी में गर्द बहुत ही कम पैदा होगी, जिससे फसलों का भूसा तथा दाना खराब न हो सकेगा ।

सरकारी फार्मों पर तथा अन्यान्य बड़े-बड़े जमींदारों के यहां खलिहान की फर्श पक्की भी बना लेते हैं । फर्श पक्की बनाने में एक बार खर्च तो अधिक पड़ता है, किन्तु खलिहान कुछ दिनों के लिये स्थायी तथा लाभदायक हो जाता है । पक्के खलिहान कंकड़ पत्थर की गिट्टी तथा सिमेन्ट और बालू द्वारा बनाये जाते हैं । जो लोग पूरा खलिहान पक्का नहीं बना सकते, वह लोग थोड़ा सा भाग खलिहान का पक्का बना लेते हैं । यह भाग प्रायः गोलाकार होता है ; इस खलिहान के पक्के गोलाकार भाग पर फसलों की मड़ाई करने पर फसलों की कोई हानि नहीं होती; मड़ा हुआ दाना तथा भूसा सुरक्षित रहता है । जिससे फसलों की आय का अनुभव ठीक-ठीक किया जा सकता है । जिन लोगों के पास पैसा हो साथ ही साथ अधिक क्षेत्रफल में चकवन्दी में खेती करने हो, उन्हें पक्का खलिहान अवश्य बना लेना चाहिये ।

खलिहान की सफ़ाई

साधारण किसानों को अपने बगीचे तथा खेत के खलिहान को फसलों की कटाई करने के पहिले भर्ती प्रकार से साफ़ कर लेना चाहिये, सफ़ाई करने के लिये सबसे पहिले फावड़े से खलिहान की मिट्टी समतल करके खलिहान के गड़दों तथा चूहे की बिलों इत्यादि

को भली प्रकार से मिट्टी तथा कंकड़-पत्थर के रोड़ों से भर देना चाहिये ।

खलिहान की भूमि अधिकतर कार-कार्तिक के महीने में ठीक की जाती है, क्योंकि इस महीने में खरीफ़ की फ़सलें कट कटकर खलिहान में आने के लिये खेतों में पकी तैयार खड़ी रहती हैं । कार कार्तिक में वर्षा समाप्त हो जाती है । इसलिये खलिहान की भूमि को फावड़े से समतल करने के बाद खुरपे द्वारा खलिहान की घास मजदूरों से छिलवाकर खलिहान साफ़ करवा लेना चाहिये । जब खलिहान में भूमि की समतलता तथा घास की छिलाई हो जाय तो कच्चे खलिहान को पशुओं के गोबर द्वारा पानी की सहायता से मजदूरों द्वारा भली प्रकार से लिपवा डालना चाहिये; जब खलिहान लिप जाय तो उसे दो-चार दिन सूखने के लिये छोड़ देना चाहिये । इस बीच में खलिहान के चारों ओर बाँस का बाड़ा लगा देना चाहिये । जिसमें एक तरफ़ से मनुष्यों तथा पशुओं के आने का मार्ग हो, शेष तीनों तरफ़ से खलिहान बाँस के बाड़ से घिरा हुआ हो । पेसा करने से रात तथा दिन में भी गाँव के छुटे हुये मवेशी, बनैलें पशु तथा चोर सरलता से खलिहान में घुसकर हानि न पहुँचा सकेंगे । उपर्युक्त रीति से जब खलिहान ठीक हो जाय—तो खलिहान में फ़सलों को इकट्ठा करने का काम आरम्भ कर देना चाहिये । खरीफ़ की फ़सलों में से कुछ फ़सलें तो वर्षा काल में ही पककर तैयार हो जाती हैं; जिनके लिये खलिहान का उपयोग तो कठिन हो जाता है । उन फ़सलों में से साँवा, काकुन, महुआ, भदौला, (जल्द पकने वाला

उर्द) तथा शीघ्र पकने वाली मूँग की फसलों की गणना की जा सकती है। ऐसी फसलों को किमान लोग थोड़े क्षेत्रफल में अपनी आवश्यकतानुसार बोते हैं; यह फसलें भादों में पककर तैयार हो जाती हैं। इन फसलों को काटकर वर्षाकाल में फूस के छप्परों में रखकर इनका दाना अलग कर लिया जाता है; इनका हरा डंठल गंडासे से काट कर हरे चारे के रूप में पशुओं को खिला दिया जाता है। अधिकतर इन फसलों के लिये खलिहान वर्षाकाल में काम नहीं देते। हाँ, जिन लोगों के खलिहान की फर्श पक्की होती है; जिसका ढाल ऐसा होता है कि वर्षा का पानी बरस कर बह जाता है; उस समय में आसमान के खुल जाने पर जब धूप निकल आती है -- तो ऐसी फसलें थोड़ी-थोड़ी काटकर खलिहान में जमाकर ली जाती हैं। ऐसी फसलों को काटकर उसी खलिहान में इनका अन्न अलग कर लिया जाता है। हरे चारे की कूटी उसी समय बनाकर पशुओं को खिला दी जाती है। इस प्रकार की फसलें यदि दो-चार दिन भी खलिहान में या फूस के छप्परों के नीचे पड़ी रहती हैं -- तो फसलों के मड़ जाने का भय रहता है। इसलिये जो फसलें भादों में पक जाती हैं, उनसे दाना और चारा काटकर तुरन्त अलग-अलग खलिहान में करने से ही लाभ हो सकता है, अन्यथा देर करने से हानि की संभावना है।

जो फसलें खरीफ में क्वार-कार्तिक में पकती हैं। उनमें से ज्वार, बाजरा, तिल, उरद, मूँग, धान इत्यादि की फसलें मुख्य हैं। जिनकी

कटाई करने के पश्चात् उन्हें खलिहान में एकत्रित करना पड़ता है। जब ऐसी फ़सलों की कटाई मजदूरों द्वारा - पूरे ग्राम में सब किसानों की कटकर, अपने-अपने खलिहान में जमा हो जाती तो उसके पश्चात् इन फ़सलों से दाना तथा कर्बी अलहदा की जाती है। खरीफ़ की इन फ़सलों से दाना, भूसा, कर्बी पुआल अलग करने में लगभग एक मास लग जाता है। खरीफ़ की ऐसी फ़सलों का दाना-भूसा अलग करने में अगहन मास समाप्त हो जाता है। एक महीने तक खरीफ़ की फ़सलों से अन्न तथा भूसा, कर्बी प्राप्त करने में खलिहान में काम होता रहता है।

खरीफ़ की कुछ फ़सलें तो ऐसी हैं, जिनके बंडल भूमि में एकत्रित किये जाते हैं, जैसे धान, तिल, ज्वार, बाजरा, उरद, मूग इत्यादि। कुछ फ़सलें ऐसी हैं, जिनके पौदे लम्बे होते हैं। इनको खड़ा करके रखना पड़ता है। जिन फ़सलों के बंडल खलिहान में रक्खे जा सकते हैं, उन्हें खलिहान में एक स्थान में एकत्रित कर देना चाहिये। उसके पास में पर्याप्त दूरी देकर दूसरी फ़सलें रखना चाहिये। किन्तु जिन फ़सलों के बंडल खड़े करके रक्खे जाते हैं। उनको रखने के लिये खलिहान में एक कतार में दस-दस फीट की दूरी पर आवश्यकतानुसार बांस के तथा बल्ली के दस फीट लम्बे = १० खम्भे गाड़ देना चाहिये। इन खम्भों का ज़मीन में गहराई से मिट्टी खोदकर कुछ गहराई तक मजबूती से गाड़ना निहायत जरूरी है। जिसमें फ़सलों के बंडल इनके चारों ओर आसानी से रक्खे जा सकें।

ऐसे खम्भों के सहारे ज्वार-वाजर की फसलों के बंडल खम्भे के चारों ओर रखे जा सकते हैं। इन खम्भों के चारों ओर सौ से लेकर चार सौ बंडल तक रखना उपयुक्त होगा। अथवा जहाँ पर सांगड़ा की रीति से मजदूर लोग ज्वार-वाजर की कटाई करते हैं : वहाँ पर एक-एक मजदूर को एक-एक खम्भा बंडलों को रखने के लिये नियत कर देना चाहिये। इस रीति से रखवाने में बंडलों की गणना भी आसानी से खलिहान में की जा सकती है। साथ ही साथ मजदूरों के ऊपर शासन भी उचित रूप से हो सकता है। जिससे मजदूरों में आपस में किसी प्रकार का असंतोष न होगा और किसी प्रकार की गड़बड़ी भी न फैलेगी। इस रीति से जब ज्वार-वाजर के बंडल खलिहान में एकत्रित हो जायें तो इनकी बालियों पर धान का पुआल छुड़वा कर ढक देना चाहिये। नहीं तो इनके भुट्टे तथा बालियों के दानों का चिड़ियाँ बैठकर चुग जायेंगी। ऐसी रीति से बंडलों को न रखने पर खलिहान में चिड़ियों द्वारा अधिक हानि होती है। इसलिये ज्वार-वाजर की बालियों तथा भुट्टों को खलिहान में पुआल, टाट तथा उरद, मूंग के कूटे से ढकना अर्थात् आवश्यक है। वरना हानि अधिक होगी।

जब फसलें खलिहान में जमा हो जायें—तो फसलों से अन्न अलग करने के लिये एक-एक फसल की मड़ाई-दवाई करना आवश्यक है। खरीफ की फसलें वर्षाकाल के पश्चात् और जाड़े के आरम्भ में तैयार होती हैं। इसलिये इनके पौदे तथा बालियाँ

अधिकतर नम होती हैं। ऐसी अवस्था में धान, तिल, उरद मृग के बंडलों को ग्वालकर पहिले धूप में सुखाना पड़ता है। जब फसल के डंठल तथा अन्न मृग्य जाने हैं। तब इन फसलों से मड़ाई-दवाँडे करके दाना, भूसा, पैरा, करवी अलग की जाती है। इसलिये इनके बंडलों को ग्वालकर सुखाने के लिये ग्वलिहान में पर्याप्त भूमि की आवश्यकता होती है। जिन फसलों के डंठल अधिक नम हों उन्हें ग्वलिहान में काटने के दूसरे दिन में ही सुखाना आरंभ करना चाहिये; नहीं तो फसल के डंठल और अन्न में भुकुड़ी लग जायगी और इससे अधिक हानि होगी।

खरीफ की फसलों में मृगफली की खुदाई करने पर यदि मृगफली की फलियों को धूप में न सुखाया जाय—तो फलियों में फफूँदी लग जाती है, जिससे मृगफली के दाने खराब हो जाते हैं। इसलिये नम फसलों को ग्वलिहान में सुखाना आवश्यक है।

जिस प्रकार से खरीफ की फसल को ग्वलिहान में रखने के लिये उक्त रीतियाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयुक्त हैं। उसी प्रकार से रबी की फसलें जब फाल्गुन मास में पककर तैयार हो जाती हैं तो फाल्गुन-चैत्र में इनकी कटाई आरम्भ की जाती हैं। खरीफ की फसलों के समान रबी की फसलों के पौदे नम नहीं रहते। केवल अरहर तथा कुसुम के कुछ पौदे नम रहते हैं। शेष रबी की फसलों के पौदे फाल्गुन की पछिवाँ हवा के कारण खेत में ही भली प्रकार से सूख जाते हैं; तब इनकी कटाई आरम्भ की जाती है।

रबी की फसलों की कटाई के पहिले - खरीफ में इन्तमाल किये गये खलिहान को पुनः एक बार साफ करके लीपना पड़ता है। तब इस खलिहान में रबी की फसलें एकत्रित की जाती हैं। रबी में सबसे पहिले मटर तथा सरसों की फसल तैयार होती है। इन फसलों को खेत में काटकर खलिहान में एकत्रित करते हैं यदि किसानों के खेतों में सरसों तथा मटर की कई किस्में हों तो इन किस्मों को पर्याप्त दूरी पर खलिहान में अलग-अलग रखना चाहिये। यदि एक ही जाति की हों तो सब को एक स्थान पर डकट्ठा कर देना चाहिये।

इसी प्रकार से जव, गेहूँ, चना, अलसी इत्यादि की फसलों की कटाई करके खलिहान में एक जाति की फसल एक स्थान में एकत्रित करना अतीव आवश्यक है। वरना एक जाति की फसल के बीज दूसरी जाति के फसलों की बीजों में मिल जाने में फसलों के बीज मिलवाँ और अशुद्ध हो जायेंगे। यदि किसी किसान ने गेहूँ की कई किस्में—या किसी चकवन्दी के फार्म पर गेहूँ की उन्नति प्राप्त जातियाँ नं० ४, १२, ५२ तथा देशी गेहूँ भी बोया गया हो तो उन्हें काटकर खलिहान में पर्याप्त दूरी पर एकत्रित करना चाहिये, नहीं तो एक जाति के गेहूँ का बीज दूसरी जाति के गेहूँ के बीज में मिलकर मिलवाँ हो जायगा।

इसी रीति से जव तथा चना की फसलें भी खलिहान में अलग-अलग पर्याप्त फासिले पर रखना आवश्यक है, यदि फार्म में उन्नति-प्राप्त जव तथा देशी जव इसी प्रकार से पूसा चना

नं० २५ तथा ५८ अथवा क़ाबुली चने को क़िस्में भी बोई गई हैं—तो उन्हें खेत से काटकर खलिहान में सावधानी से काफ़ी फ़ासिलें पर रखना उचित होगा । यदि खलिहान में ज़रा सी भी असावधानी हुई तो फ़सलों के बीज मिलकर अशुद्ध हो जायेंगे ।

जिस प्रकार से रबी की सभी फ़सलों के लिये कटाई के बाद खलिहान में रखने समय सावधानी की आवश्यकता है । उसी प्रकार से अरहर, कुसुम इत्यादि फ़सलों को भी यदि इनकी कई क़िस्में फार्म में या किसानों के यहाँ बोई हों तो काटकर खलिहान में अलग-अलग सावधानी से रखना चाहिये । खलिहान की सावधानी पर ही फ़सलों के बीजों की शुद्धता निर्भर है ।

जिन बातों पर रबी तथा ख़रीफ़ की फ़सलों के बीजों की शुद्धता खलिहान में मौलिक रूप में सुरक्षित रह सकती है । उन बातों पर विस्तार रूप से विचार प्रकट किया गया है । अतिरिक्त इन बातों के अन्यान्य दुर्घटनाएँ भी खलिहान में ऋतुओं के अनुसार उपस्थित हो जाती हैं । उस समय में मौक़े को देखकर अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके स्वयं फ़सलों की रक्षा करना चाहिये । क्योंकि खेत से फ़सलों को लाकर जब खलिहान में जमा किया जाता है । तब फ़सलों का खज़ाना खलिहान में जमा हो जाता है । धन-धान्य के इस खज़ाने की खलिहान में रक्षा करना तथा उसे शुद्ध रखना, जिससे अगली फ़सल भी शुद्ध रहे, खलिहान के कार्यकर्त्ता की योग्यता पर निर्भर है ।

देहातों में जब खलिहान में फसल आ जाती है— तो हरक किसान बागों में अपने-अपने खलिहान में रात का मोतें हैं। हरक बाग में लगभग आठ-दस किसानों का खलिहान लगाया जाता है। पहिले किसानों में सुमति थी। खलिहानों में रात के समय गाना बजाना होता था, जिससे देहातों में आनन्द-पूर्वक आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत होता था।

वर्तमानकाल में किसानों में आपस में फूट हाने के कारण देहातों में खलिहान में आग लगाकर एक दूसरे का धन-धान्य नष्ट किया करते हैं। इन कुप्रथाओं को बन्द करके ग्रामों में सहयोग-समितियों की स्थापना द्वारा सुमति पैदा करना चाहिये, जिसमें खलिहान में किसानों का आमोद-प्रमोद का जीवन बिताने का अवसर मिले।

गाँवों के शराबखोर बालक खलिहान की फसलों को उठाकर ग्रामों की हॉली में डालकर जला देते हैं; जिसमें किसानों का आर्थिक-दृष्टि से हानि पहुँचती है। यदि खलिहान एकत्रित करने वालों में सहयोग हो तो खलिहान में जाँ-जाँ हानियाँ उत्तरीतियों से होती हैं; वह आपस के सहयोग से दूर की जा सकती हैं।

मड़ाई

खलिहान में फसलों को कटकर एकत्रित हो जाने के बाद मड़ाई-दवाई का काम आरम्भ हो जाता है। मड़ाई का काम अधिकतर बैलों से ही लिया जाता है। किन्तु खरीफ तथा रबी में उत्पन्न होने वाली कुछ ऐसी भी फसलें हैं, जिनका भूसा-दाना अन्य रीतियों से भी अलग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर खरीफ में धान की फसल का क्षेत्रफल अन्य फसलों से अधिक होता है। धान का बीज निकालने के लिये खलिहान में चारपाई का प्रयोग करते हैं। चारपाई या लकड़ी का कोई मोटा भाग खलिहान में रखकर उसपर धान के पौदों को हाथ में लेकर सटकते हैं। जिससे धान का अंश पौदे से अलग होकर गिर जाता है। इस रीति में धान और पुआल अलग हो जाता है। बाद में धान को खलिहान में फैलाकर माँड़ते हैं; इस रीति से सटक कर तथा बैलों से मड़ाई करके धान की फसल का पुआल तथा दाना अलग किया जाता है। कारी धान प्रायः बैलों से माँड़ा जाता है; अगहनी धान हाथ से सटक कर खलिहान में फसल तैयार की जाती है। इसी प्रकार से खरीफ की अन्यान्य फसलें भी खलिहान में अन्यान्य रीतियों से माँड़ी-दयीं जाती हैं।

ज्वार-याजरे की बालियाँ पहिले हँसियों से पौदों से करपी जाती हैं, बाद में इनकी बालियों पर बैलों को दाँय चलाकर मड़ाई

की जाती है। मड़ाई करने पर जब ज्वार-बाजरे की बालियों से दाना और खुलुरा अलग हो जाता है—तो उसे हवा में ओसाकर दाना साफ किया जाता है।

मक्के के भुट्टों को लकड़ी के पिटनों से पीटकर ग्वलिहान में दाना अलग करते हैं। इस रीति के अतिरिक्त मक्के के भुट्टे से दाना अलग करने के लिये मशीनों का भी प्रयोग आजकल आरम्भ हो गया है। खरीफ़ की कुछ फ़सलों की तो मड़ाई की जाती है जैसे उरद, मूँग इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ फ़सलों से अन्य रीतियों से दाना-भूसा अलग किया जाता है।

रबी की फ़सलों में मड़ाई का काम ग्वलिहान में विशेष रूप से किया जाता है, इसका प्रधान कारण यह है कि रबी में गेहूँ, जव चना, मटर, सरसों इत्यादि की फ़सलों को माड़कर उनका दाना अलग करने के बाद उनका भूसा भी इतना महीन बनाया जाता है, जिसे पशु अच्छी तरह से खा सकें। यह बात खरीफ़ की फ़सलों के सम्बन्ध में नहीं पाई जाती। क्योंकि ज्वार-बाजरे की करबी को हाथ से लोहे की गड़ामों द्वारा कुट्टी बनाकर ग्विलाया जाता है। कुट्टी बनाने के लिये आजकल तो मशीनों का भी रवाज प्रचलित हो गया है।

भूसे के उपयोग के कारण ग्वलिहान में रबी की सारी फ़सलों की मड़ाई चैलों की दौँय चलाकर की जाती है। ग्वलिहान में गेहूँ के बंडलों को खोलकर गोलाई में फैला दिया जाता है। गोलाई में फैले हुये गेहूँ के बंडलों को 'पैर' कहते हैं। एक पैर में लगभग सौ बंडल

गेहुँओं का माँड़ा जा सकता है। 'पैर' की मोटाई किसानों के बंडलों पर निर्भर है, यदि किसी किसान के यहाँ थोड़े ही क्षेत्रफल में गेहूँ या जव बोया गया था तो उसकी पैर छोटी होगी।

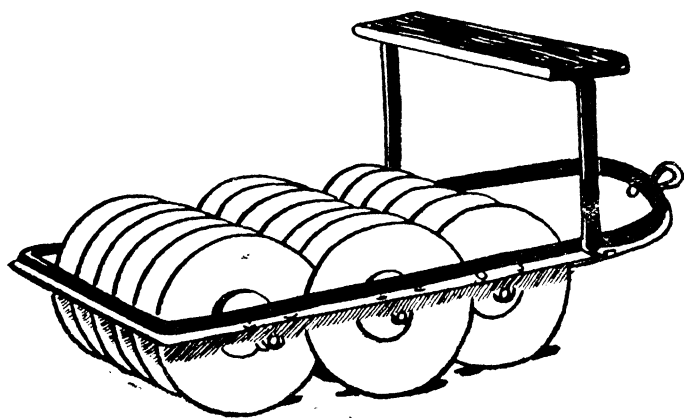
गोलाई में बनी हुई इस पैर पर बैलों की दाँय चलाई जानी है। बैलों की दाँय में दो बैल से लेकर आठ बैल तक जोड़े जाते हैं। इन बैलों को चलाने के लिये एक आदमी की आवश्यकता होती है; यह आदमी रस्सी से सब बैलों को जोड़कर बैलों को पैर पर चलाता है, बैलों की दाँय चलाकर रसलों की मड़ाई की जाती है। उक्त रीति से मड़ाई करने के लिये एक आदमी की और आवश्यकता होती है—जो पैर पर जव या गेहूँ के बंडलों को खोल-खोलकर फैलाता जाता है। इस रीति से पैर बनाने में दो आदमियों की आवश्यकता हुआ करती है। जब बैलों द्वारा मड़ाई की जाती है—तो बैलों के मुँह में खोंच लगा दी जाती है। जिससे वह आसानी से मड़ाई करें। यह खोंच सनई के रेशे से बनाई जाती है। जब कभी खोंच बैलों के मुँह में नहीं लगी रहती तो बैल पैर पर फैले हुए नाज के डंठलों को खाने में लग जाते हैं; जिससे अन्न की हानि होती है। दूसरे दाँय चलाकर मड़ाई करने वाला आदमी भी बैलों को हाँकने में परेशान रह जाता है। इसलिये मड़ाई करते समय खोंच लगाकर बैलों को चलाने का रवाज बहुत सी जगहों में प्रचलित है।

कुछ स्थानों के किसान बैलों के मुँह में मड़ाई के समय खोंच का व्यवहार नहीं करते, आरम्भ में बैलों द्वारा दो-चार दिन तक

पैर पर अन्न की विशेष रूप में हानि होती है, किन्तु जब पैर का अन्न खाने-खाते उनकी तबीयत भर जाती है—तो बैलों द्वारा हानि बहुत ही कम होती है। ऐसी अवस्था में दाँय चलाने वाले को बाद में परिश्रम भी अधिक नहीं करना पड़ता। पैर पर बिना खोंच दिये हुये जब जानवर चलाये जाते हैं तो ऐसी अवस्था में पैर पर अन्न-भूसा खूब खाते हैं—तो इस ऋतु में वह मोटे-ताजे भी हो जाते हैं। ऐसा प्रायः वही किसान करते हैं, जो प्रति दिन अपने जानवरों को दाना तथा खली चूनी नहीं देते। जो लोग रोज़ाना अपने जानवरों को रातिव देते हैं; उन्हें खोंच लगा करके ही बैलों की दाँय चलाना लाभप्रद है। बिना खोंच लगाये बैलों की दाँय चलाने से दाने की जो हानि होती है; उसका अनुभव पैदावार की दृष्टि से नहीं किया जा सकता। क्योंकि वर्तमान काल में इस बात का अनुभव करना भी आवश्यक है कि प्रति एकड़ खेती में क्या खर्च पड़ा—और आय कितनी हुई; खर्च निकालने पर लाभ क्या बचा।

लाभ का पता लगाने के लिये दाँय चलाने के समय बैलों के मुख में खोंच का लगाना अतीव आवश्यक है। जब खलिहान में पैर बनाई जाय तथा बैलों की दाँय चलती रहे। तो इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि पैर के दाने छिटक कर दूसरी जाति के रखे हुये फसलों की लांक में न मिल जायें। नहीं तो फसलों के बीज अशुद्ध हो जायेंगे। बीजों की शुद्धता पर मढ़ाई के समय विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है।

रबी की फसलों की मड़ाई के लिये वैज्ञानिक रीति से लोहे के



चित्र नं० १०

आलपाड थ्रेशर

कई एक यन्त्र बनाये गये हैं। उनमें से इस यन्त्र का नाम आलपाड थ्रेशर है। यह यन्त्र एक जोड़ी बैल से एक आदमी द्वारा चलाया जाता है। दाँय चलाने वाले आदमी इसका व्यवहार आसानी से कर सकते हैं।

जिस दाँय को चलाने के लिये कई बैलों की आवश्यकता होती है, उस दाँय को इस यन्त्र द्वारा दो बैल चलाकर छः बैल का काम कर सकते हैं। इस यन्त्र का दाम लगभग ४५) है। इस यन्त्र के प्रयोग से गेहूँ, जव तथा रबी की अन्यान्य फसलों की मड़ाई की जा सकती है, इस यन्त्र के प्रयोग से भूसा भी

महीन हो जाता है: लांक भी शीघ्र टूट जाती है। इसलिये मड़ाई के लिये ऐसे यन्त्रों का प्रयोग वर्तमान काल में आवश्यक है।

बहुत सी ऐसी भी मड़ाई करने की मशीनें हैं—जो डझन तथा विद्युत द्वारा भी चलाई जाती हैं। जिनमें रबी की फसलों द्वारा दाना तो अलग कर लिया जाता है। किन्तु लांक का भूसा नहीं बनता। भूसा बनाने के लिये दाँय चलाना बाद में आवश्यक हो जाता है। ऐसी मशीनों का प्रयोग अधिक क्षेत्रफल में खेती करने वाले लोगों के लिये लाभप्रद है। किन्तु जो लोग थोड़े क्षेत्रफल में खेती करते हैं, उन्हें "आलपाड थ्रेशर" का प्रयोग करना आवश्यक है। सहयोग-समितियों की सहायता से यह यन्त्र खरीदें तथा प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

जिस समय मड़ाई की जाती है, उस समय जब, गेहूँ के बंडल दबकर महीने होते जाते हैं, जिसमें थोड़ी देर में पैर बहुत ही मोटी हो जाती है, दोपहर तक मड़ाई करने के बाद—जब बैलों को सुस्ताने या खाने के लिये पशुशाले में बाँध दिया जाता है—तो पैर को लकड़ी के एक औज़ार द्वारा उलट-पलट दिया जाता है। लकड़ी के जिस यन्त्र द्वारा यह काम किया जाता है: उसे 'पाँचा' कहते हैं।

यह 'पाँचा' लकड़ी से देहानों में लुहारों द्वारा बनवाया जाता है। पैर को उलटने-पलटने के लिये 'पाँचे' का प्रयोग अतीव आवश्यक है। लगभग तीन फीट से लेकर पाँच फीट लम्बी लकड़ी लेकर उसमें लकड़ी के पाँच दाँत लगा दिये जाते हैं। इसमें एक लकड़ी

हाथ से पकड़ने के लिये लगाई जाती है; हाथ से पकड़ कर पाँचे द्वारा पैर की मड़ी हुई सारी फसल उलट-पलट कर बराबर दाँयी-माड़ी जाती है। एक पैर को उलटने-पलटने के लिये ४-५ बार पाँचे का प्रयोग किया जाता है। सौ बंडलों की एक पैर चार-पाँच दिन में मड़कर इस योग्य हो जाती है कि वह हवा में ओसाई जा सके। इस रीति से खलिहान में नवीन वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से बैलों द्वारा दाँय चलाकर रबी की फसलों में दाना-भूसा अलग करना चाहिये।

जब खलिहान में मड़ाई नवीन तथा प्राचीन किसी भी रीति से होती रहे उस समय में बीजों की शुद्धता पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। जब भूसा महीन हो जाय—तो पैर को पाँचे की सहायता से एकत्रित करके इकट्ठा कर लेना चाहिये। जब पैर की राशि एकत्रित हो जाय तो उसे हवा में उड़ाकर दाना भूसा अलग कर लेना चाहिये। कभी-कभी खलिहान में मड़ाई के बाद जब राशि तैयार हो जाती है—तो कभी कभी पश्चिमी हवा ठीक रीति से नहीं चलती रहती जिससे फसलों की ओसाई नहीं हो पाती, ऐसी अवस्था में पैर को एकत्रित करके छाप देते हैं। इस रीति से तैयार फसल को मजदूरों द्वारा अधिक हानि पहुँचाई जाती है। इसलिये तैयार राशि पर जब वह ओसाई न जा सके तो रात में सोना आवश्यक है।

कभी-कभी तैयार राशि के ओसाने के पहिले खलिहान में पानी भी बरस जाता है, जिससे मड़ी हुई राशि का दाना और भूसा पीला पड़ जाता है। ऐसे अवसर पर पानी के बरस जाने के बाद

यदि आसमान खुल जाय तथा धूप निकल आवे तो मड़ी हुई गेहूँ या जव की राश का ऊपरी भाग जो पानी से भीग गया हो सावधानी से अलग करके खलिहान में सूखने के लिये फैला देना चाहिये ।

पानी जो ऐसे मौकों पर बरसा करता है उसमें हानि अधिक होती है । किन्तु जो चतुर किसान होते हैं और फसलों की मड़ाई करके उसे ठीक रीति से एकत्रित करके छाप देते हैं, उसमें पानी बरस कर ऊपर से ही अपने आप वह जाता है । लगभग दो डब्ब के पानी राशि के भीतर गिरता है । शेष राशि सूखी रहती है । मड़ी हुई फसल यदि पानी से भिगकर खराब हो जाय तो मौकों पर सावधानी से काम लेकर खलिहान में ऐसे उपचार करने चाहिये: जिससे अन्न तथा भूमे की हानि न हो ।

मड़ाई का काम उक्त रीतियों से जव खलिहान में समाप्त हो जाता है—तो फसलों की ओसाई का काम आरम्भ होता है । फसलों की मड़ाई के समान ही ओसाई का विषय भी एक स्वतन्त्र विषय है । उसका वर्णन आगे किया जायगा । इस स्थान पर मड़ाई के सम्बन्ध में इतना और बतलाना बहुत जरूरी है कि खरीफ तथा रबी की जिन फसलों की मड़ाई बैलों की दाँय चलाकर की जाती है, उनका खर्च निकालना भी आवश्यक है, जिससे मड़ाई द्वारा खर्च का अनुमान किया जा सके ।

एक पैर जिसमें गेहूँ तथा जव के सौ बंडल मँड़े जाते हैं उसमें लगभग २५ मन गेहूँ मँड़ा जाता है । लगभग ५० मन

भूसा तैयार होता है। दों आदमी पाँच दिन तक रोज़ाना काम करते हैं- ॥) के हिसाब से २॥) मज़दूरों की मज़दूरी होती है। छः बैल पाँच दिन तक प्रति दिन काम करते हैं। इस रीति से लगभग दस रुपये के बैलों की ख़र्चा भी हो जाती है। मँड़ाई में भी २५ मन अन्न तथा ५० मन भूसा तैयार करने में कम से कम १०) अधिक से अधिक १५) खर्च पड़ जाता है, किसान यह काम अपने हाथ से करता है।

फसलों की ओसाई

मई के बाद फसलों की ओसाई का काम खनिहान में आरंभ होता है। मई हुई फसल से दाना-भूसा अलग करने के लिये फसलों को हवा में उड़ाने के काम को फसलों का ओसाना कहते हैं, इसी काम को ओसाई भी कहते हैं। खरीफ और रबी की फसलों का ओसाने में पछिवाँ हवा से काम लिया जाता है। रबी की फसलों का ओसाने के लिये चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ में पछिवाँ हवा बराबर चलती रहती है। किन्तु खरीफ की मई हुई फसलों का ओसाने के लिये कार्तिक अगहन में पछिवाँ हवा की कुछ कमी रहती है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी कपड़ों की चादर द्वारा दो आदमी मिलकर हाथ से हवा करने हैं। कपड़े की चादर द्वारा कृत्रिम रीति से जो हवा निकाली जाती है, उससे थोड़ी-सी फसल ओसाई जा सकती है। पर्याप्त मात्रा में तैयार राशि का ढेर इस रीति से नहीं ओसाया जा सकता। इस रीति से फसलों के ओसाने का काम जिस प्रथा से किया जाता है उसे 'परौता' मारना कहते हैं। परौता मारकर अधिकतर बग़ार में निकाला हुआ बीज साफ़ किया जाता है। कभी-कभी रबी तथा खरीफ़ की भी फसलें इस रीति से ओसाई जाती हैं।

जब पछिवाँ हवा ज़ोरों से चलती है,—तो तीन-चार आदमी अरहर के रहठे से बनी हुई पलरियों द्वारा मई हुई राश को भर लेते

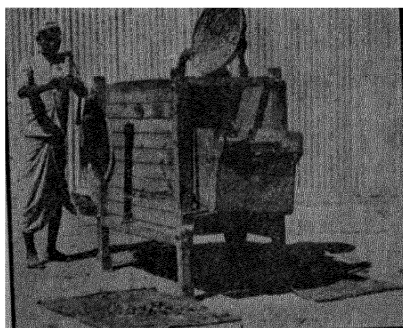
हैं, एक आदमी के पीछे दूसरा आदमी हाथ को अपने सिर के ऊपर करके धीरे-धीरे मड़ी हुई फसल को पलरी से उड़ाता जाता है, इस रीति से भूसा उड़कर अलग हो जाता है, दाना वहीं पर गिरता जाता है। इस दाने के साथ फसलों के मड़े हुये छोटे-छोटे डंठल, गाँठें जो वजन में भारी होती हैं, उड़कर भूसे के साथ दूर जाकर नहीं गिर सकते, वह भी दाने के साथ गिरकर मिले रहते हैं।

भूसे की इस गाँठ को एक आदमी सीक की बढनी से बैठकर दाने से अलग करता जाता है। इस रीति से मड़ी हुई सारी फसल को खलिहान में ओसा कर अलग कर लेते हैं। फसलों को ओसाने के लिये जब तेज़ हवा चलती रहती है—तो कुछ अन्य तद्बीरों भी की जाती है, जिससे भूसे की हानि कम होती है; नहीं तो तेज़ हवा में दाने की सफाई तो ठीक होती है, किन्तु भूसे के उड़ जाने से हानि अधिक होती है, इसलिये जहाँ मड़ी हुई राशि ओसाई जाती है, उसके पूरब तरफ़ फूम की टट्टियाँ या अरहर के बंडल रखे रहते हैं, जिससे ओसाने पर भूसा उड़कर खराब न हो जाय। जहाँ तक संभव हो एक जाति की फसलों माड़ कर एक साथ ओसाई जाँय तो फसलों की उपज मालूम हो जाती है। कई बार अलग-अलग ओसाने से खलिहान में सब बातों का पता एक मर्तबे के बजाय कई मर्तबे में ज्ञान होता है। जैसे मान लिया जाय कि हमारे पास गेहूँ पूसा नं० ४ तथा ५२ दोनों की फसलें खलिहान में काटकर रक्खी गई हैं—तो ऐसी अवस्था में गेहूँ पूसा नं० ४ की मड़ाई करके जितनी राशि तैयार हो सके, तैयार करके सब को एक साथ

ही ओसाकर खलिहान से उनका बीज हटाकर तथा खलिहान को साफ करके, तब दूसरी जाति के गेहूँ की मड़ाई तथा ओसाई करना चाहिये। यदि पूसा नं० ४ का गेहूँ पहिले माँड़ा गया है—तो उसकी मड़ाई और ओसाई को समाप्त करके तभी पूसा नं० ५२ के गेहूँ की मड़ाई-ओसाई करना आवश्यक है।

उक्त रीतियों से खलिहान में खरीफ तथा रबी की मड़ी हुई फसलों की ओसाई करके दाना भूसा अलग कर लेना चाहिये। हवा में उड़ाने के लिये नव सिखिया मज्जदूरों को नहीं लगाना चाहिये। जो मज्जदूर दो-चार वर्ष से ओसाई का काम कर चुके हैं, उन्हीं से मड़ी हुई फसलों को ओसवाना चाहिये; अन्यथा ओसाई के काम में गड़बड़ी होगी।

मड़ी हुई फसलों को ओसाने के लिये कुछ मशीनें भी आजकल वैज्ञानिक रीतियों से तैयार की गई हैं; जिनके द्वारा मड़ी हुई फसलें ओसाई जाती हैं।



जिन स्थानों में वैज्ञानिक रीतियों से अधिक

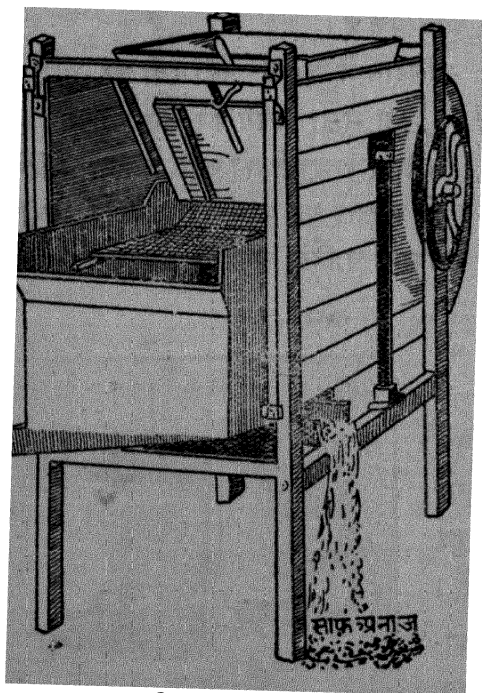
क्षेत्रफल में फार्म—स्थापित करके खेती की जाती है।

उन स्थानों में फसलों को जल्द से जल्द तैयार करने के लिये मड़ी हुई

चित्र नं० ११

ओसाने की मशीन

फसलों को आसाने के लिये पछिवाँ हवा का इन्तज़ार नहीं किया जाता। इन मशीनों के भीतर पंखे लगे रहते हैं। बाहर से जब इन मशीनों के पंखे चलाये जाते हैं—तो हवा पैदा होती है। इन मशीनों के भीतर जब मड़ी हुई फसल का दाना-भूसा डाला जाता है—तो वह



चित्र नं० १२

आसाया हुआ साफ़ अन्न

पंखे की हवा के द्वारा साफ़ हो जाता है। मशीन से दाना अलग होकर एक किनारे गिरता है। इन मशीनों का प्रयोग उन गाँवों में जहाँ सहयोग-समितियों द्वारा चकबन्दी में खेती की जाती हो, किया जा सकता है। अधिकतर यह मशीनें छोटे-छोटे काश्तकारों के लिये कारआमद नहीं हो सकतीं।

जब एक बार फसलों को आसाकर दान-भूसा अलग कर

लिया जाता है। तब दूसरी बार इस प्राप्त किये हुये दाने को पुनः वहीं पर ओसाकर उसमे से भूसे की गाँठें साफ़ करके अन्न को ठीक कर लेते हैं।

आजकल वैज्ञानिक रीतियों में जो मशीनें ओसाने के लिये तैयार की गई हैं; उनमें यन्त्रों की सहायता से अन्न का छोटा तथा बड़ा दाना भी अलग-अलग होता जाता है, किन्तु हवा में ओसाने से ऐसा नहीं होता। हवा में जो अन्न ओसाकर भूसे से अलग किया जाता है, उसका छोटा तथा बड़ा दाना अलग करने के लिये बीजों की सफ़ाई अलग से करनी पड़ती है।

मशीनों में खलिस बोई हुई फ़सलों का ही अन्न इस रीति से ओसाया जा सकता है। मिलावाँ बोई हुई फ़सलों के ओसाने के लिये हवा में ओमाना ही अधिक लाभप्रद है। जब फ़सल ओसाकर तैयार कर ली जायँ तो उन्हें तौलकर खलिहान में उठाकर गोदाम में या घर में रखना चाहिये। इस रीति से सारी फ़सल खलिहान से माँड़-दाँय कर ओसाने के बाद गोदाम में रख लेना चाहिये।

गोदामों में बीज की सफ़ाई

जब खलिहान से फ़सलों से अन्न तैयार होकर गोदाम में आ जाता है तो उस समय में बीजों की सफ़ाई करना आवश्यक होता जाता है। अधिकतर लोग बीजों की सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते जिससे बीज का दाम बाजारों में उचित रूप से नहीं मिलता। बीजों की सफ़ाई के लिये कई बातों पर विचार करना पड़ता है।

जैसे मान लीजिये कि फसल ग्वलिहान में तैयार होकर तुलकर गोदाम में आ गई तो इस गेहूँ के अन्न में गेहूँ के छोटे-बड़े दाने गेहूँ की पाँखी तथा जव, चना के दाने इसी प्रकार से सरसों अलसी के भी दाने पाये जाते हैं।

जो फसलें बागों के ग्वलिहान में माँड़ी-दाँयी तथा ओसाई जाती हैं। उनमें मिट्टी, कंकड़ के गोंड़े तथा सिटके भी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त आम के बौर के भी कुछ भाग अन्न के ढेर में पाये जाते हैं, यदि इन सब चीजों की सफाई न की जाय तो अन्न न तो बीज की ही दृष्टि से गोदामों में सुरक्षित रखा जा सकता है; न बाजारों में ऐसा अन्न अच्छे मूल्य पर बेचा जा सकता है। इसलिये गोदाम या बखार में रखने के पहिले बीजों की सफाई करना अति आवश्यक है। बीजों की सफाई करने के लिये चलनों की तथा मूप की आवश्यकता पड़ती है। चलने प्रायः बाजार में बने बनाये भी विकते हैं। अधिकतर चलनों का अपनी आवश्यकता के अनुसार लोहे की जालियाँ खरीद कर ग्वयं बनवाना अधिक लाभप्रद होता है।

चलना

कुछ चलने तो इस दृष्टि से बनवाये जाते हैं, जिनमें से अन्न की गर्द तथा महीन अन्नो के दाने जैसे सरसों, अलसी के अन्न गिर जाते हैं। इस काम के लिये महीन जाली के चलनों की आवश्यकता होती है। कुछ चलनों की जाली इससे बड़ी होती है, जिसमें चलने से बड़ा दाना तो चलने में रह जाता है, छोटा

और महीन दाना नीचे गिर जाता है। इन चलनों द्वारा बीज साफ करने से उच्च श्रेणी का बीज अलग हो जाता है। जिसे बीज के लिये एकत्रित किया जाता है, या बीज के लिये बेंच भी दिया जाता है। कुछ लोग ऐसे अन्न को जो बाजारों में बेचना चाहते हैं उन्हें मूल्य भी उचित रूप में मिलता है। इसलिये अन्न को सफाई चलनों से अवश्य करना चाहिये।

कुछ फसलें मिलवाँ बाँड़ी जाती हैं। जैसे कहीं-कहीं गेहूँ में चना मिलाकर बोते हैं। इसी प्रकार से चने के साथ अलसी मिलाकर बाँड़ी जाती हैं। जब में मटर मिलाकर बोने का भी रवाज प्रचलित है। जब यह फसलें पककर खलिहान में कटकर आ जाती है तो इन फसलों की मड़ाई भी मिलाकर ही हो जाती है। ओसाने के पश्चात् इन अन्नो को अलग-अलग करने के लिये चलने तथा सूप का प्रयोग करना पड़ता है।

इस रीति से चलने द्वारा चना में से अलसी अलग की जाती है। इसी प्रकार से गेहूँ से चना तथा जब में मटर अलग करने हैं। जब दाने अलग-अलग हो जाते हैं तो सूप की मदद से उन्हें साफ कर लेते हैं। सूप द्वारा थोड़ी मात्रा में अन्न साफ किया जाता है, चलने द्वारा अधिक मात्रा में अन्न साफ किया जाता है। सूप को प्रयोग करने के लिये अधिकतर औरतों से काम लिया जाता है। किन्तु चलने का प्रयोग मर्दों द्वारा भी होता है। इसलिये जहाँ जैसी आवश्यकता हो वहाँ पर उतनी संख्या में सूप तथा चलनों को खरीद कर रखना चाहिये।

चलने आकार प्रकार में छोट-बड़े होते हैं, इनकी जालियाँ भी कई किस्म की होती हैं। जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न चीजें साफ की जाती हैं। गोदाम में हरेक प्रकार के चलने रखकर बीजों की सफाई करना चाहिये, जब बीज साफ हों जाय तो उसे बराबर बज़न में बोरे में भरकर रखना चाहिये। अधिकतर अन्न एक बोरे में दो मन से लेकर ढाई मन तक आता है।

गेहूँ तथा चना-मटर रखने के लिये ढाई मन के बोरे बनाना ठीक है। जब के लिये दो मन का बोरा बनाना चाहिये, इस रीति से तैयार किये हुये अन्न को बेंचने के लिये या गोदाम में रखने के लिए बोरो में भरकर रखना चाहिये।

बीजों की सफाई के पश्चात् जब बोरे बन्दी का काम गोदामों में समाप्त हो जाय तो फसलों का आय-व्यय भी रजिस्टर में दर्ज कर लेना चाहिये। जिससे पता चल जाय कि कितनी उपज किस खेत से किस अन्न की हुई।

अन्न की खरीद फरोख्त

तैयार किए हुये अन्न को गोदाम से तुरन्त बेंचने का प्रबन्ध करना चाहिये; खेत तथा खलिहान से जो अन्न, गुड़, भूसा इत्यादि प्राप्त हो जाय उसे बेंचने से यदि अच्छा मूल्य मिलता हो तो आय की दृष्टि से बेंच डालना चाहिये।

देहातों में आजकल रोज़गार की कमी है, इसलिये खेती से जो अन्न, सामान किसानों द्वारा तैयार हों, उसे सहयोग-समितियों

द्वारा खरीद-फरोख्त करने से अधिक लाभ है। जो सहयोग समितियाँ इन अन्नो से उपयोगी पदार्थ बना सकें; उन्हें किसानों द्वारा उपयोगी पदार्थ बनवा कर खरीद फरोख्त करने से अधिक लाभ होगा।

उदाहरण के तौर पर तेल की फसलों से तेल निकाल करके तेल और खली का व्यापार। इसी प्रकार से दाल की फसलों से दाल बनाकर दाल तथा चूनी-भूसी का व्यापार करने से विशेष रूप से लाभ होगा। फसलों का क्रय-विक्रय देहाती अर्थशास्त्र का एक प्रधान विषय हैं। इसीपर किसानों की आर्थिक आय का दारो-मदार है। इसलिये इस विषय में सावधानी से काम लेना चाहिये। बहुत से किसान जो आर्थिक-कठिनाइयों में फँसे रहते हैं; जैसे ही उनका अन्न अथवा खेती की अन्यान्य वस्तुयें तैयार होकर घर आती हैं, वैसे ही गाँव के बनिष्ठा, ज़मींदारों के कारिन्दे तथा देशी महाजन अपना मतालबा वसूल करने लिए किसानों को घर घर लेते हैं। ऐसी मुसीबत में फँसकर किसान अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए सस्ते दामों में अपनी खेती की उपज इन लोगों के हाथ मजबूरन बेच देता है।

खेती की आय को उक्त रीतियों से बेच देने के कारण किसानों को दो प्रकार से हानि होती है। पहिली हानि तो इस प्रकार से हुई कि जब फसल तैयार होती है, उस समय अधिकतर अर्थात् बैशाख-ज्येष्ठ तथा कार्तिक-अग्रहन में बाज़ार भाव ममता रहता है। दूसरे जिनका मतालबा किसानों के ऊपर रहता है, वह लोग

बाज़ार भाव में भी समता किसान से लेते हैं। ऐसी अवस्था में किसान का एक रुपये की उपज का केवल बारह आना ही प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था में खेती की उपज से जो आय किसानों को होती है, वह उनके हाथ से समे भावों निकल जाती है। न तो उस आय के बेचने में उन्हें इतना धन ही मिलता है, कि उनका ऋण मारा अदा हो जाय, जिससे वह ऋण मुक्त हो जायें।

दूसरी हानि यह होती है कि किसान के पास सारी उपज के विक्रि जाने के बाद अगली फसल के बोने के लिए न तो बीज बचता है, न खाने के लिये अन्न। ऐसी अवस्था में वह कभी भी अपने खेती के व्यवसाय में उन्नति नहीं कर सकता।

सहयोगी-बीज भण्डार

देश तथा प्रान्त के किसानों की आर्थिक-कठिनाइयों का देखकर देश की सरकार ने देहातों में सहयोगी-समितियों के स्थापना की जो स्कीम प्रचलित की है, उस पर ध्यान देने से किसानों की आर्थिक समस्याएँ सुलभ सकती हैं। जिन ग्रामों के किसान अपने कृषि-उद्यवसाय की उन्नति से अपनी आर्थिक-उन्नति करना चाहते हैं। उन्हें आपस के सहयोग से ग्रामों में सहयोग-समितियों की स्थापना करना चाहिए। ग्राम के सभी वालिग लोगों को इस सहयोग समिति का सदस्य बनकर ग्राम की कृषि में सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिये।

ग्राम की कृषि सुधार के साथ ही साथ जो व्यवसाय ग्रामों में कृषि की उपज द्वारा प्राचीन काल से ही संचालित होते थे,

उनका उद्धार करके गाँव वालों की बेकारी दूर करना चाहिए। नए-नए व्यवसायों को जो हाथ से किये जा सकते हों, उनकी स्थापना करनी चाहिए।

उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि किसी ग्राम में कृषि-विभाग का उन्नति प्राप्त कपास का बीज बोया गया। इससे किसानों को उपज में अच्छी रई प्राप्त हुई। इस रई को किसानों को सीधे बनियों के हाथ बेचने से अधिक लाभ न होगा। बल्कि इस रई और बिनौले को सब कोई ग्राम में स्थापित सहयोगी-बीज भंडार में जमा कर दें। सहयोगी बीज भंडार उनकी वस्तुओं को जमा करके उनकी आवश्यकतानुसार उन्हें कुछ धन आरम्भ में देकर उनका काम चला देगा। बाद में सहयोग-विभाग द्वारा वह रई अच्छे दामों में बेचकर किसानों को हिस्साव समझा दिया जायगा।

जिन ग्रामों में सहयोग-समितियों के अधिकारी व्यावसायिक क्षेत्रों में भी उन्नति करने के साधन ग्रामों में एकत्रित कर लिये होंगे, उन ग्रामों में उस कपास को ओटवा तथा बुनवा कर उन्हीं किसानों से उस कपास का सूत भी तैयार कराया जा सकता है। इस सूत को बेचने से कपास की अपेक्षा अधिक आय होगी। यदि सूत द्वारा गाँवों में ही करघे द्वारा हाथ से कपड़ा बुनवाने का कार्य भी सहयोग-समितियों की सहायता से किमान लागू करने लगे तो उन्हें गाँवों में ही वस्त्र भी मिल जायगा। इस रीति से उन्हें विशेष रूप में आर्थिक लाभ होगा।

कपास के बाद जो बिनौला प्राप्त होता है, उसका तेल बनाकर उसके तेल तथा खली का व्यापार भी किया जा सकता है।

देहातों में ईख बाने के पश्चात् जब ईख की फसल तैयार होती है—तो जहाँ पर मिलें हैं, वहाँ पर तो गन्ना ठीक रीति से बिक जाता है, किन्तु जहाँ पर मिलें नहीं हैं, वहाँ पर किसानों को गुड़ बनाना पड़ता है। कभी-कभी गुड़ का भाव देश की राष्ट्रीय अर्थ-शास्त्र की नीति के अनुसार बहुत ही सस्ता हो जाता है जिससे किसानों को गन्ने की खेती से आय के बजाय हानि की सम्भावना हो जाती है। किसानों का यह गुड़ सस्ते भावों पर बिक कर बनियों के द्वारा देश के व्यापारियों के पास चला जाता है। बाद में यही गुड़ गलाकर मिलों में गुड़ से भी चीनी बनाई जाती है, जिसका मूल्य गुड़ की अपेक्षा अधिक मिलता है।

उक्त हानि से बचने के लिए देहाती अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से ग्रामों की सहयोग-समितियाँ प्रान्तीय गुड़ उन्नति विभाग की सहायता से उत्तम श्रेणी का गुड़ बनाकर तथा देशी रीति से चीनी, बूरा, मिश्री बनाकर गुड़ की अपेक्षा उसे सहयोगी बीज भंडारों-द्वारा अच्छे मूल्य पर बेच सकती हैं। गन्ने द्वारा उक्त वस्तुओं को बनाने के लिये सहयोग-समितियों की स्थापना से किसानों को हरेक दृष्टि से लाभ पहुँच सकता है।

जिन ग्रामों में तेल की फसलों की खेती अधिक क्षेत्रफल में की जाती है, उन ग्रामों में तेलहन का बीज सीधे बनियों के हाथ बेचने से किसानों को आर्थिक-लाभ नहीं हो सकता। यदि ग्रामों

में सहयोगी-बीज-भण्डार कायम हो चुके हैं—तो वहाँ पर तेलहन की फसलों से तेल निकाल कर तेल तथा खली का व्यापार करने से किसानों का अधिक लाभ होगा ।

ग्रामों में देशी कॉल्हुओं द्वारा तेलहन की फसलों से तेल निकाला जा सकता है । इससे ग्राम के बहुत से लोगों को काम करने का मौका मिलेगा । गाँव में तिल, मूँगफली, अण्डी, सरसों, तीसी, कुसुम आदि की खेती की जाती है । इनके बीजों को किसान लोग बनियों के हाथ बेच देते हैं, तेल निकालने का कार्य उस ग्राम में न होकर अन्यान्य व्यावसायिक क्षेत्रों में होता है; जिसे किसान उसके लाभ से वंचित रह जाते हैं, तेल तथा खली का व्यवसाय ग्रामों का प्राचीन व्यवसाय है; उसका उद्धार करना तथा उसे सुधार कर पुनः संचालित करना अपनी तथा देश की आर्थिकावस्था का सुधार करना है । खली पशुओं का खिलाने के काम में आती है । दूसरे बहुत से तेलहन की खलियों का प्रयोग खाद के रूप में कृषि की उन्नति के लिये किया जाता है । इसलिये तेल तथा खली का व्यापार देहातों में सहयोग द्वारा करना आवश्यक है ।

दाल की फसलों में से जौ अरहर, उरद, मूँग, मसूर ग्रामों में खेती से पैदा होती हैं । उसे किसान लोग सीधे बनियों के हाथ बेचकर अपना काम चलाते हैं । यदि ग्राम वासी सहयोगी बीज भण्डारों की सहायता से दालें तथा उरद की धोई इत्यादि बनाकर बेचने का व्यवसाय ग्रामों में जारी करें तो आर्थिक आय बढ़ सकती है ।

उरद, मूँग के पापड़, मुंगौरी, मेथैरी इत्यादि पदार्थ भी देहातों में किसानों द्वारा तैयार किये जाते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से इनका व्यापार सहयोगी-बीज भण्डारों द्वारा करने से आर्थिक लाभ की संभावना है। खेती द्वारा जो धन-धान्य उत्पन्न हों, उसे सहयोगी बीज भण्डारों में एकत्रित करके रखना चाहिये। उनके द्वारा जो वस्तुएँ देहातों में बन सकें, उन्हें बनाकर उसका व्यवसाय करना आर्थिक-दृष्टि से उपादेय है। जिन ग्रामों में ऐसे व्यवसायों से लाभ उठाया जा सकता है, उठाना चाहिये अन्यथा खेती की उपज को संचय करके रखना चाहिये। जब इनको बेचने से लाभ हों, तभी इनको बेचना चाहिये। मसते मूल्य पर बेचने की अपेक्षा कुछ समय बाद अच्छे दाम पर बेचना अच्छा है। सहयोगी-बीज-भण्डार के कर्मचारियों को देहातों की तथा नगरों की बाजारों का भाव-ताव देखते रहना चाहिये।

बग़ार

सहयोगी बीज भण्डारों द्वारा खेती की उपज संग्रह करके जो जो व्यवसाय संभव हों उनको तो देहातों में आर्थिक-दृष्टि से करना चाहिये। साथ ही अगली फ़सल में बोने के लिये बीज को भी सुरक्षित करके रखना चाहिये। देहातों में बोने के लिये जहाँ पर अन्न संग्रह किया जाता है, उसे बख़ार कहते हैं। बख़ार में बोने के लिये बीज रक्खा जाता है। साथ ही बीज के अतिरिक्त जो अन्न खाने तथा बेचने के काम में आता है, उसे भी बख़ार में रखते हैं।

देहातों में वखार अधिकतर वही किसान बनाते हैं। जिनके पास अन्न उनकी आवश्यकता से अधिक पैदा होता है, या जो लोग देहातों में गल्ले का लेन-देन करते हैं। इन्हें अधिकतर लोग देहातों में 'महाजन' कह कर पुकारते हैं।

यह देशी महाजन जिस तरीके से गल्ले का वखार में गलत हैं, तथा। उसका लेन-देन बीज की दृष्टि से करते हैं वखार का वह तरीका बिल्कुल गलत तथा हानिकर है। देहात के महाजनों का इसका तनिक भी ध्यान नहीं रहता कि जिस गल्ले का हम किसानों से लेकर इकट्ठा कर रहे हैं; उनमें से किसका अन्न शुद्ध तथा निरोग है, जो बीज की दृष्टि से वखार में गल्ला जा सकता है। इसके अनिश्चित किन-किन किसानों का बीज अशुद्ध तथा रोगी है जो बीज की दृष्टि से संग्रह नहीं किया जा सकता। देशी महाजनों की इन असावधानियों का फल किसानों का भुगतना पड़ता है। जिससे किसानों की हानि तो होती ही है, साथ ही आर्थिक-दृष्टि से विचार करने पर देश की भी आर्थिक हानि होती है। देशी महाजनों का किसानों से एकत्रित हुआ अन्न बीज की दृष्टि से कभी भी उपयुक्त हो नहीं सकता। वह अन्न केवल खाने के काम में खौही के तौर पर वितरण किया जा सकता है।

देहातों में जो महाजन अन्न बाँटने का काम करते हैं, वह सावन भादों में वखार से खौही के रूप में अन्न किसानों का सवाई, या ऊयोदे पर बाँटते हैं। इसके बाद कार-कार्तिक में उसी वखार से बोने के लिये भी किसानों को अन्न देते हैं। किसान लोग अपनी

ग़रज के कारण जैसा बीज पाने हैं उसे ले जाकर के बोने तथा खाने हैं। यदि कोई किसान उक्त दोनों अवसरों पर बीज न लेकर बोने के लिये सरकारी बीज भण्डारों से बीज लाता है तो उसे देशी महाजन ख़ौही नहीं देने। सरकारी बीज भण्डारों में ख़ौही नहीं दी जाती। वह केवल बीज बाँटते हैं। इसलिये किसान हमेशा देशी महाजनों के चङ्गुल में फँसा रहता है।

जिन ग्रामों में सहयोगी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं, उन्हें अपना बीज भण्डार स्वयं बनाना चाहिए, जिससे उन्हें शुद्ध तथा निरोग बीज बोने के लिये मिले। यह बीज भण्डार जो ग्रामों में सहयोगी-समितियों द्वारा स्थापित किये जायँ; इसमें ग्रामों के किसानों की मुविधा के किये कुछ अन्न बख़ार में ख़ौही देने के लिये बीज के अतिरिक्त संग्रह किया जाय, जिससे उनकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हों।

इस रीति से ग्रामों में सहयोगी बीज-भण्डारों का बीज दो-तीन कांठरियों में संग्रह करना पड़ेगा। एक कमरे में तो ख़रीफ़ के बीज की बख़ार अलग बनानी पड़ेगी। दूसरे कमरे में ख़ौही देने के लिये एक बख़ार बनानी पड़ेगी। तीसरे कमरे में रबी के बीजों की बख़ार बनाना होगा। यदि स्थान की कमी हो और कमरे पर्याप्त रूप से लम्बे-चौड़े हों तो ख़रीफ़ का बीज और ख़ौही देने का अन्न एक ही कमरे में भी रक्खा जा सकता है। क्योंकि ख़रीफ़ का बीज आपाढ़ मास में बँट जाता है। लगभग सावन मास में ख़ौही का अन्न भी बँट जाता है। इसलिये जगह की कमी के कारण

उन दोनों प्रकार के अन्न की वखार एक कमरे में बनाई जा सकती है।

रबी की वखार वर्षा-काल में कभी भूल से भी नहीं खुल सकती। इसलिये रबी के बीजों की वखार किसी ऐसे कमरे में बनानी चाहिए, जिसमें वर्षाकाल की वायु का प्रवेश न हो सके।

प्राचीन काल में रबी के बीजों को भूमि के भीतर 'गाड़' खोदकर रखने की प्रथा थी। यह 'गाड़' अधिकतर खुले मैदानों में खोदी जाती थीं। कभी-कभी वर्षा का पानी 'गाड़' में जो भूमि के भीतर खोदी जाती थीं भर जाता था। जिससे गाड़ का सारा अन्न पानी से भीगकर बोन के योग्य नहीं रह जाता था। यह प्रथा अब धीरे-धीरे वन्द हो गई है। बहुत से ग्रामों में 'गाड़' मकान के भीतर छप्पर के नीचे बनाई जाती थी, जिनमें रबी का अन्न भर दिया जाता था, ऐसी गाड़ में अधिकतर पानी सेहानि नहीं पहुँचती थी। मकान के भीतर तथा बाहर अन्न संग्रह करने के लिये गाड़ या खत्तियाँ बनाना उभी हालत में ठीक है जब कि यह पक्की हों; कच्ची गाड़ या खत्ती हमेशा खतरों से भरी रहती है। इसमें वर्षा का पानी या सील पहुँचकर अन्न को नष्ट कर सकता है। इसलिये कच्ची गाड़ों या खत्तियों में भूलकर भी बीज नहीं संग्रह करना चाहिये।

बहुत सी जेलों में कैदियों को खाने के लिये जो अन्न-संग्रह किया जाता है, उसे पक्की गाड़ों में संग्रह करने का रवाज प्रचलित

हैं। कृषि-विद्यालय नैनी में भी भूमि के अन्दर कुछ पक्के कमरे बनाये गये हैं। जिसमें अन्न-संग्रह किया जाता है। वह अन्न-बीज की दृष्टि से बीजों के भी काम में लाया जाता है। साथ ही बीजों के बीजों से बच जाता है उसे खाने के लिये भी बँच दिया जाता है।

बीजों के बीजों का संग्रह करने के लिये भूमि के भीतर पक्के गोदाम बनाये जा सकते हैं, जिसमें मिमेट और बालू के संयोग से ऐसी जुड़ाई की जा सकती है, जिसमें वर्षाकाल के पानी की नमी नहीं पहुँच सकती। आजकल ग्राम-सुधार की आँख से बहुत से ग्रामों में ग्राम पंचायतों की स्थापना करके पंचायत घर बनवाये गये हैं तथा बनवाए जा रहे हैं। इन पंचायत घरों में बीजों का संग्रह करने का भी प्रबन्ध है। यदि उपयोगी समझा जाय तो कृषि-वैज्ञानिकों की राय लेकर इन पंचायत घरों में भूमि के भीतर बीजों के बीजों का संग्रह करने के लिये आवश्यकतानुसार पक्के गोदाम बनवाने का प्रयत्न करना चाहिये। इन गोदामों में वर्षा काल में वायु का प्रवेश नहीं हो सकता।

बग़ार में बीज संग्रह करने की रीति

बग़ार का कमरा चाहे भूमि के ऊपरी भाग में हो चाहे भीतरी भाग में; उसमें अन्न-संग्रह करने के लिये कई बातों पर ध्यान देना पड़ता है। जिन किसानों के ग्रामों में ग्राम-पंचायतें अथवा सह-योगी-समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं, उन ग्रामों के किसानों का अपनी आवश्यकतानुसार अपना अन्न अपने घर में रख छोड़ने

के पश्चात् सारा अन्न उक्त-समितियों के अधिकारियों के पास उसी रीति से जमा करना चाहिये, जैसे नगरों में लोग बैङ्कों में रुपया जमा करते हैं।

सहयोग-विभाग के कर्मचारी अथवा पंचायत घरों के सरपंच किसानों के इस गल्ले का हिस्साव-किताब रजिस्टर में रखेंगे। जिससे उनके लेन-देन का हिस्साव तथा लाभ-हानि का व्योमग मालाना हिस्साव पर बना करेगा।

सहयोग-समितियों के कर्मचारियों के पास अथवा ग्राम-पंचायतों के सरपंचों के पास ग्राम के किसानों द्वारा जो अन्न एकत्रित हो, उसका निर्गन्तव्य निम्न-लिखित रीतियों से करने रहना चाहिये।

(१) पहिली बात जिस पर ध्यान देना है, वह यह है कि जो किसान अन्न जमा कर रहा है, उसका वह बीज उन्नति-प्राप्त बीज है, और वह बीज के लिये बीज की दृष्टि से संग्रह किया जा सकता है। यदि उसमें सफाई की जरूरत हो तो अपने सामने साफ करवा कर बीज तौल कर ले लेना चाहिये। किसान के खाने में अथवा जो रजिस्टर इस काम के लिये बना हो, उसमें बीज का हिस्साव दर्ज कर लेना चाहिये और किसान को रसीद दे देना चाहिये।

(२) दूसरी बात जो ध्यान पूर्वक देखने की है, वह यह है कि किसान जो बीज जमा कर रहा है वह यदि अशुद्ध, रोगी तथा देशी है तो उसे दूसरी श्रेणी के बीजों में संग्रह कर लेना चाहिये।

ऐसा बीज खाने तथा बेंचने के काम में लाया जा सकता है। इस अन्न को दूसरे कमरे में संग्रह करना चाहिये। इस अन्न का हिसाब-किताब भी सहयोग-समिति अथवा पंचायत घरके रजिस्टर में नियमानुसार दर्ज कर लेना चाहिये।

उक्त रीतियों से जब अन्न वैशाख ज्येष्ठ में रबी की फसलों का एकत्रित हो जाय तथा अगहन-पूस-माघ तक में खरीफ की फसलों का एकत्रित हो जाय, या वर्ष भर में जो कुछ भी उपज जमा हांती रहे, उसे एकत्रित करके बखार में रखने के लिये प्रबन्ध करना चाहिये। अधिकतर वैशाख के पश्चात् ज्येष्ठ के प्रथम पक्ष में रबी का सारा अन्न संग्रह हो जाता है।

बीज की बखार

रबी के बीजों के लिये जो बखार बनाना हां, उसकी दीवारों का तारकोल से वैशाख के मर्हाने में पोतवा डालना चाहिये। तारकोल से पुते हुये कमरे में दीमक तथा अन्यान्य कीड़ों से कोई हानि नहीं पहुँचेगी। कमरे को पुतवाने के बाद कमरे में नीम की पत्ती एकत्रित करके धुआँ कर देना चाहिये और कमरे को बन्द कर देना चाहिये। इस धुएँ से अन्न को हानि पहुँचाने वाले जीवाणु मर जायँगे। इस रीति से जब बीज के बखार का कमरा शुद्ध हो जाय—तो बखार में बीज रखने का उपाय करना चाहिये।

इस कमरे में भूमि की सतह पर कुसुम का कँटीला भूसा सब से पहिले एक फीट की मोटाई में बिछा देना चाहिये। कुसुम के

भूसे में दीमक तथा चूहे कम हानि पहुँचाने हैं। कुमुम का भूसा यदि कम हो तो गेहूँ का भी भूसा इसमें मिलाकर फ़र्श पर बिछाया जा सकता है। यदि कुमुम का भूसा न मिल सके तो खालिस गेहूँ का भी भूसा इस काम में इस्तेमाल किया जा सकता है। जब फ़र्श पर भूसा बिछ जाय तो नेथलीन की कुछ गोलियाँ भी इधर-उधर छोड़ देना चाहिये।

इस भूसे के ऊपर चारों ओर से दीवाल को दो-दो फीट छोड़ कर बोरों में भरे हुये बीज की छल्लियाँ लगाना चाहिये। बोरों में गेहूँ, मटर, चना, ढाई मन प्रति वारा के हिसाब से भरना चाहिये। जो अन्न हल्के होते हैं, जैसे जव उन्हें २ मन के हिसाब से भरना चाहिये। समान वज़न के बोरे भरकर उनकी छल्लियाँ लगाते जाना चाहिये। इन बोरों में जो बीज के लिये रखे जाँय प्रति वारा ४—५ नेथलीन की गोलियाँ छोड़कर रखने से बीजों में घुनने सड़ने का डर नहीं रहता।

दीवाल के पास जो स्थान लगभग दो फीट तक छुटा हुआ है उसमें भूसा डालते जाना चाहिये। इस रीति से बीज के बख़ार में जब सब बोरे आ जाँय—तो उसे ऊपर नीचे अगल बगल से भूसे द्वारा भली प्रकार से ढक देना चाहिये। इन बोरों का हिसाब किताब अपने रजिस्टर में दर्ज करना अतीव आवश्यक है। ज्येष्ठ के दशहरा तक बीज के गोदामों को बन्द कर देना चाहिये। इन गोदामों को वर्षाकाल में कभी खोलना नहीं चाहिये।

देशी महाजन या बहुत से किसान बीज के गोदामों में बीज को

एकत्रित करने के लिये बोरों का प्रयोग नहीं करते। वह लोग फर्श पर भूसे की लगभग ३-४ फीट ऊँची तह देकर सबसे पहिले जव की तह देकर जव रख देते हैं। उसके बाद फिर भूसे की तह देकर गेहूँ रखते हैं। इसके बाद इसी रीति से चना, मटर इत्यादि रखते हैं। इस रीति से बीज घुनता-सड़ता अधिक है। निकालते समय बीज के मिल जाने का भी भय रहता है। मिना हुआ बीज खाने-पीने में इस्तेमाल किया जा सकता है।

बीज का संग्रह करने के पश्चात् उस अन्न को दूसरे कमरे में संग्रह करना चाहिये, जो खाने तथा बेंचने के लिये हो। इस अन्न का संग्रह करने की भी वही रीति है, जो बीज के संग्रह करने की है। इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि इस बीज या अन्न में नेपथलीन की गोलिएँ नहीं झाड़ना चाहिये; जो अन्न खाने पीने के लिये संग्रह किया जाय उसके कमरे में 'कारबन वाई सलफाइड' की एक शीशी खरीद कर रख दी जाय, इस शीशी का कागसप्ताह में एक बार चौबीस घंटे के लिये खोल दिया जाय। उसके ज़हर से अन्न का हानि पहुँचाने वाले जीवाणु अपने आप मर जायेंगे। उक्त औषधि के प्रयोग से बख़्तर में अन्न के घुनने सड़ने की संभावना नहीं रहेगी। उक्त रीतियों से अन्न सभी लोग संग्रह करके लाभ उठा सकते हैं।

खेती का हिसाब किताब

खेती एक प्रकार का व्यवसाय है। जिस प्रकार से अन्यान्य व्यवसायों का हिसाब-किताब रक्खा जाता है, जिससे उस व्यव-

साय द्वारा हानि-लाभ का पता चलता है। उर्मी प्रकार से खेती का भी हिसाब-किताब रखना आवश्यक है। अन्यथा इस व्यवसाय द्वारा क्या लाभ प्रतिवर्ष हुआ या खेती से क्या हानि हुई, इसका पता कभी नहीं चल सकता। अधिकतर किसान अशिक्षित होते हैं। इस कारण वह हिसाब-किताब नहीं रख सकते। किन्तु आजकल देहातों में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार हो चुका है, प्रत्येक किसान के घर में पढ़े-लिखे लोग पाए जाते हैं। इसलिए खेती का आय-व्यय रखना अतीव आवश्यक है।

देहातों में किसानों की अवस्था, उनकी कृषि की उन्नति, तथा पतन की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जो लोग देहातों में भ्रमण करते रहते हैं, जब वह लोग किसानों से इस बात को पूछते हैं कि गत वर्षों में कृषि-द्वारा प्रति बीघा कितनी उपज हुई या इस वर्ष जो उपज हुई—तो उसका कोई भी विवरण कोई किसान नहीं दे सकता। इसमें कुछ भी पता न तो किसान को ही अपनी कृषि के आय-व्यय का रहता है, न उसकी उन्नति करने वालों को ही किसानों की आय-व्यय का पता चलता है। इसलिये इस बात का प्रयत्न करना आवश्यक है कि प्रत्येक किसान अपनी खेती का हिसाब-किताब अवश्य रखे।

जब तक खेती करने वाला किसान हिसाब-किताब नहीं रखेगा तब तक उसे इस बात का पता ही नहीं चल सकता कि उसकी खेती से इस वर्ष कितनी आय हुई। उस आय में से खर्च निकालने पर उसे लाभ कितना बचा। यदि लाभ नहीं निकला तो

हानि कितनी हुई। इस हानि का क्या कारण है? जो हानि हुई है किन रीतियों से उपाय करके बचाई जा सकती थी। अगले वर्ष इन हानियों से बचने के लिये क्या-क्या उपाय करना चाहिये।

उक्त बातों की स्वयं जानकारी रखने के लिये अथवा सरकारी तथा गैर सरकारी जो लोग उनकी तथा उनके व्यवसाय की उन्नति के इच्छुक हैं; उनकी जानकारी के लिये प्रत्येक किसान को कृषि-व्यवसाय का हिसाब रखना आवश्यक है, इस हिसाब को रखने के लिये नीचे लिखे रजिस्टर रखना चाहिये।

(१) मजदूरों का रजिस्टर—प्रत्येक किसान खेती के काम में कुछ न कुछ मजदूर अवश्य रखता है जो किमान स्वयं अपना काम करते हैं, खेती के काम के लिये मजदूर नहीं रखते। उन्हें भी अपने काम की हाजिरी रजिस्टर में रखना चाहिये तथा अपनी मेहनत का मूल्य वही समझना चाहिये जो कि वही काम यदि वह दूसरे के यहाँ करते तो उन्हें क्या मजदूरी मिलती।

देहातों में अधिकतर हलवाह या मजदूर पैसे पर नहीं रखे जाते, उन्हें अन्न की मजदूरी कुछ रुपया तथा खेत दिया जाता है। इसलिये इनका रजिस्टर सरकारी फार्मों के रजिस्टर से मिल-जुल नहीं सकता। अतएव हिन्दी मास के अनुसार ज्येष्ठ या आषाढ़ से मजदूरों का एक रजिस्टर बना लेना चाहिये। यह रजिस्टर पाक्षिक हो सकता है। जिसमें १५ दिन का हिसाब लिखा जा सकता है। आवश्यकतानुसार इसमें प्रति-दिन जितने मजदूर काम

करें, उनकी तिथि के अनुसार हाजिरी तथा उन्हें अन्न या पैसा जो दिया जाय उसकी रकम लिखी जानी चाहिये। सोरहठा तथा लेहना की भी मजदूरी का अन्दाज़न मूल्य देना चाहिये। अपनी मेहनत तथा घर के सभी प्राणियों की मेहनत का मूल्य लिखना चाहिये। मजदूरों के हाजिरी रजिस्टर में प्रत्येक मास की मजदूरी का खर्च निकल आवेगा। इससे पता चल जायगा कि साल भर में मजदूरी में कितना खर्च हुआ या घर के लोगों ने जो मेहनत की उसका क्या मूल्य हुआ।

(२) फसलों की आय का रजिस्टर दूसरा रजिस्टर फसलों की उपज का होना चाहिये। इस रजिस्टर में जितनी फसलें बाँई जायँ, उसके अनुसार सफे बना लेना चाहिये। फसलों की आय के अनुसार जैसे गन्ना, गेहूँ, जव, आलू, मटर इत्यादि के लिये सालाना एक रजिस्टर होना चाहिये। प्रतिदिन जितना गुड़ बन उसे तारीखवार लिखना चाहिये। एक फसल के लिये ६-७ सफे हिसाब रखने के लिये पर्याप्त होंगे। एक फसल के बाद—दूसरी फसल का दूसरी के बाद—तीसरी फसल का हिसाब रखना चाहिये।

उक्त रीति में पता चल जायगा कि किस फसल में कितनी आय हुई। सारी फसल की आय निकालने पर आसानी से इस बात का पता चल जायगा कि साल भर में फसलों से इतनी आय हुई।

(३) फसलों की काशत का रजिस्टर तीसरा रजिस्टर फसलों की काशत का होना चाहिये। इस रजिस्टर में किसान के पास जितने

खेत हों उनके अनुसार सफे, नियत कर लेना चाहिये। हर एक खेत के लिये सिलसिले वार नम्बर के आलावा दूसरे खाने में पटवारी के खसरे का नम्बर भी लिख लेना चाहिये।

आपाढ़ मास से इस रजिस्टर में प्रत्येक खेत में जो काम किया जाय तिथिवार लिखना चाहिये। खेतों की जुताई, बुवाई, खाद, सिंचाई इत्यादि का खर्च, लगान, नहर के पानी का मूल्य लगाकर प्रत्येक खेत की पैदावार और खर्च इस रजिस्टर में निकाला जा सकता है।

(४) पशुओं का रजिस्टर - चौथा रजिस्टर पशुओं के सम्बन्ध में किसानों को रखना चाहिये, पशु किस तिथि को खरीदा गया या घर में पैदा हुआ, उसके पालन-पोषण का क्या खर्च है, उसके परिश्रम का क्या मूल्य है, उसके द्वारा कितनी खाद उसके मूत्र और गोबर से प्राप्त होती है, इन सब बातों का पता पशुओं के रजिस्टर से चलना आवश्यक है, नहीं तो पशु-धन के द्वारा आय-व्यय का पता न चलेगा।

१) कृषि-यन्त्र रजिस्टर—पाँचवाँ रजिस्टर कृषि-यन्त्रों का होना चाहिये। इस रजिस्टर में देशी हल, उन्नति प्राप्त हल, फावड़ा, खुरपी, कुदाल, नार, मोट, सभी का हिस्सा-किताब रखना चाहिये। जिससे पता चले कि यह औज़ार कब खरीदा गया, इसके खरीदने में क्या व्यय पड़ा, कितने दिन यह औज़ार चला, कौन औज़ार खो गया, कौन किससे नष्ट हुआ।

उक्त पाँचों रजिस्ट्रों में एक साधारण किसान अपनी खेती-

बारी का हिसाब-किताब रख सकता है। जिससे खेती द्वारा आय-व्यय का पता चल सकता है। इन रजिस्ट्रों के अतिरिक्त जिन लोगों के यहाँ नक़द रूप में रुपये-पैसे का खर्च खेती के काम में होता हो, उन्हें एक वही भी रखना चाहिये, इस वही में जो आय-व्यय नक़द रूप में होता हो, उसे लिखकर माहवार इस बात का संक्षेप में हिसाब बनाकर एक रजिस्टर में उतार लेना चाहिये, जिसे पक्का रजिस्टर या पक्की वही के नाम से कहते हैं। उक्त रजिस्ट्रों तथा वही में प्रत्येक किसान अपनी खेती का हिसाब रखकर आय-व्यय का अनुमान कर सकता है।

सहयोग समितियों का हिसाब-किताब

किसानों को अपना निजी हिसाब रखने के अतिरिक्त जिन गाँवों में सहयोग-समितियाँ या पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं। वह अपने गाँव भर का हिसाब अपने रजिस्ट्रों में रखती हैं। सहयोग-विभाग के कर्मचारियों द्वारा ग्राम पंचायतों का हिसाब किताब रखा जाता है, जिसमें किसानों के लेन-देन का हिसाब रहता है।

किसानों को अपने निजी रजिस्ट्रों में इस लेन-देन का दर्ज रखना चाहिये। सहयोग-समितियों के रजिस्ट्रों के अनुसार अपने रजिस्ट्रों में सभी बातें लिखकर उनका मिलान समयानुसार करके अपना हिसाब-किताब ठीक कर लेना चाहिये।

अपने निजी रजिस्ट्रों के अतिरिक्त जो कर्मचारियों द्वारा

किताबें हिसाब-किताब की मिलें उन्हें हिफाजत के साथ रखना चाहिये । जिससे उनके हिसाब किताब का पता अपने आप मिलता जाय । जो किमान उन सारे रजिस्ट्रों को ठीक रीति से न रखेगा उमीके हिसाब में गड़बड़ी हो सकती है और वह हानि उठा सकता है ।

बहुत से लोग अधिक क्षेत्रफल में फार्म स्थापित करके खेती करते हैं । उनका व्यवसाय आर्थिक-दृष्टि से किया जाता है । उनके हिसाब ठीक रीति से रखे जाते हैं । उनके हिसाब लिखने के लिये कई प्रकार के रजिस्टर होते हैं । उन फार्मों का हिसाब किताब लिखने के लिये शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो हिसाब-किताब रखने के विषय में वर्तमान शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर चुके हों ।

फार्म का हिसाब-किताब रखना फार्म के प्रबन्ध का एक खास विषय है । इसलिये इस पुस्तक में कलेवर बढ़ जाने के कारण उसका वर्णन करना उपयुक्त नहीं है । फार्म का हिसाब किताब फार्म के प्रबन्ध के सम्बन्ध में जो पुस्तक है उसमें भली प्रकार से समझाया जायगा, पाठकों को “फार्म-प्रबन्ध” नामक पुस्तक से इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहिये ।
